

८६२
अलोचना

न न्द दा स

•

रामरतन भटनागर, एम० ए०

ल • इलाहाबाद
१९४६

प्रथम संस्करण, १९४७
द्वितीय संस्करण, १९४८

३६

.. मइल, ५६-ए, जीरो रोड, इलाहाबाद ।
.. जम जायसवाल, राम प्रिंटिंग प्रेस, बीटगंज, इला

इस पुस्तक को मैं अपने पूज्य चसुरपद
कृष्णभक्त बाबू भगवतप्रसाद की दिवंगत
आत्मा को समर्पित करता हूँ जिनका नन्ददास
की जन्मभूमि और शिक्षाभूमि से एक चतुर्थ
शताब्दी का सम्बन्ध रहा ।

—रामरतन भटनागर

प्रथम संस्करण, १९४३
द्वितीय संस्करण, १९४८



प्रकाशक—किताब महल, ५६-ए, बीरो ३
मुद्रक—सदलराम जायसवाल, राम प्रि

इस पुस्तक को मैं अपने पूज्य भसुरपद
 कृष्णमक्त चावू भगवतप्रसाद की दिवंगत
 आत्मा को समर्पित करता हूँ जिनका नन्ददास
 की जन्मभूमि और शिक्षाभूमि से एक चतुर्थ
 शताब्दी का सम्बन्ध रहा ।

—रामरत्न भटनागर

भूमिका

श्रीमन्महाभारतम्

मात्रा तुल्य नभस्य वा मृदा मात्रा है । इयथा आकाश वरी
विश्वविद्यालय बना मर्यादा है । नभस्य के वरी का प्रमाणित
मंदिर उसमें ही नहीं है, 'अविशिष्ट' ही 'एक' मात्र प्रमाणित वरी को ही
प्रमाणित मानकर काम चलाना मर्यादा है । आकरकता इस बात की है,
कि कोईभी का द्वि-विभाग नभस्य के वरी का अनुमानित एवं
प्रमाणित मर्यादा प्रकाशित कर ।

—रामरत्न मटनागर

विषय-सूची

१. श्रीमती	
२. रचनाएँ	१
३. नन्ददास के काव्य में पुष्टिमार्ग के मिथान्त	५७
४. नन्ददास का पदावली साहित्य (गीत-काव्य)	११६
५. नन्ददास की मक्ति	१४४
६. काव्य और कला	१५६
७. परिशिष्ट—वज्रमाचार्य का शुद्धाद्वैतदर्शन और पुष्टिमार्ग	१७४
	२१४

जीवनी

हमारे अन्य भक्त कवियों की भाँति नंददास ने भी अपने संबंध में कुछ नहीं लिखा है। अतः उनके संबंध में भी वही समझा है जो तुलसीदास और तुलसीदास जैसे प्रसिद्ध कवियों के संबंध में है। अब तक प्रयत्न करने पर भी हम उनके निश्चित, सामाजिक जीवनरूप का निर्माण नहीं कर सके हैं। फिर भी अन्तर्भाव और बहिर्भाव के आधार पर हम इस ओर प्रयत्न कर सकते हैं।

अन्तर्भाव की सामग्री बहुत कम है। अन्तर्भाव में ऐसी सामग्री का समावेश होता है जो कवि के अपने ग्रन्थों में पाई जाती है। जैसा हमने ऊपर कहा है नंददास ने अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है। अतः उनकी रचनाएँ हमें उनकी प्रतिदिन की परिस्थितियों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं देती। कवि 'किस वंश का था, किस कुल का था, उसकी छाति क्या थी, जन्मस्थान कहाँ था, हम कुछ नहीं जानते। रचनाओं से हमें उनके बल्लभकुल में दीक्षित होने और उस सम्प्रदाय के माननीय कवि होने के ही प्रमाण उपलब्ध हो सकते हैं। उनके गुरु विठ्ठलनाथ वे यह कुछ पक्षों से जान पड़ता है और गुरु के प्रति उनकी निःसीम भक्ति विदित होती है—

प्रातः समै श्री वल्लभमुत्त को उठतहि रसना लीत्रै नाम,
 आनंदकारी, मंगलकारी, असुर हरन, जन पूरन धाम ।
 इहलोक परलोक के बन्धु, कौ कहि सके तिहारे गुन धाम,
 नन्ददास प्रभु रसिक सरोमनि, राज करौ गोकुल मुख धाम ।

(पदावली, २८०)

साथ ही यह भी विदित होता है कि वह बहुधा उनके अत्यन्त
 सन्निकट ही रहते थे । वे कहते हैं—

प्रातः समै श्री वल्लभमुत्त के बदन कमल को दरसन कीत्रै,
 तोनि लोक बन्दित पुरुषोत्तम, उपमा को पटतर को दीत्रै ।
 श्री वल्लभकुल उदति चन्द्रमा, यह छवि नैन-चकोरन पीत्रै,
 नन्ददास श्री वल्लभमुत्त पर तन-मन-धन ग्योद्धावर कीत्रै ।

(वही, २८१)

और उनकी कामना यही है कि वे बराबर विठ्ठल जी के चरण कमल
 का मकरन्द प्राप्त कर सकें—

श्री विठ्ठल मंगल रूप निधान
 कोटि अमृतसम हँस मृदु बोलन सबके जीवन धाम,
 कल्याण-विन्धु उदार कलतरु देत अभय पद धाम ।
 शरण आये की लाज चहुँ दिख बाजे प्रकट निधान,
 तुम्हारे चरण कमल के मकरन्द मन मधुकर लिपटान ।
 नन्ददास प्रभु द्वारे रटत हैं, रुचत नहीं बहु धाम ॥

(परिशिष्ट, ४०)

यह भी पता लगता है कि विठ्ठलनाथ के श्लेष पुत्रादि में भी
 उनकी भक्ति थी । 'विनय-पत्रिका' के स्तोत्रों की शैली पर एक श्लोक
 निम्नलिखित अन्तिम पद है—

'नन्ददासन' नाथ पिता गिरधर आदि,
 प्रगट अवतार गिरिराजधारी

(पदावली, २८५)

उनके कुछ पदों से उनका ब्रज-प्रेम प्रगट है और यमुना की भक्ति भी कितने ही पदों में प्रगट होती है। "नन्दगाँव नीकी लागत मोको" जैसे पद कवि की जीवनी पर इतना ही प्रकाश डाल सकते हैं कि ब्रजवास उसे अत्यंत प्रिय था।

इस ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में हमने नन्ददास के दार्शनिक और धार्मिक सिद्धान्तों का विशद अध्ययन किया है। परिशिष्ट में बल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक भीमद्वयल्लभानार्य और विठ्ठलनाथ के दार्शनिक एवं धार्मिक विचार भी दिये गये हैं। दोनों की साधारण तुलना करने पर ही यह प्रगट हो जाता है कि वे बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे और उन्होंने इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का अत्यन्त गहरा अध्ययन किया था। उनके सारे ग्रन्थों से पता चला है कि वे कृष्ण को ब्रह्म और अपना इष्टदेव मानते हैं। उन्होंने वात्सल्य रस के भी कुछ पद लिखे हैं जिससे यह स्पष्ट है कि कृष्ण के बालरूप की भक्ति भी उनमें थी। परमपूज्यविद्यालयात्मजी का सम्बन्ध गोविन्द और राधाकृष्ण की शृंगार-लीला से है। अतः ये मधुरमाव के भक्त थे।

परन्तु एक आश्चर्य की बात है कि अपने कुछ पदों में वे रामभक्त के रूप में प्रगट होते हैं जैसे कई पदों में उन्होंने राम के दूत हनुमान के सागर-लंघन की कथा लिखी है—

(१)

खर कूची हनुमान उदधि जानकी मुधि लेन को,
देखन को दसमाथ, अपने नाथ को मुख देन को।
आ गिरि पर चढ़ि बुलाँच लीनी उचकीयाँ,
सो गिरि दस ओजन पवि गयो है पानी महीयाँ।
घरनी पवि गई पताल, भार परे जाग्यो,
सेठहु को सीस पाइ, कमठ पीठ लाग्यो।
अरुन बदन तेज सदन बहो पीन गात है,
उत्तर हैं दक्षिण मानो मेरु उद्यो जात है।

कैसे कहेंगे कि मैं भी नहीं जानूँ कि,
मैं क्या कहूँ कि मैं, जो कह रहा हूँ कि,
मैं, जो कह रहा हूँ कि, मैं भी नहीं जानूँ कि,
मैं भी नहीं जानूँ कि मैं, जो कह रहा हूँ कि,
(३)

जो मैं भी नहीं जानूँ कि मैं, जो कह रहा हूँ कि,
मैं भी नहीं जानूँ कि मैं, जो कह रहा हूँ कि,
मैं भी नहीं जानूँ कि मैं, जो कह रहा हूँ कि,
मैं भी नहीं जानूँ कि मैं, जो कह रहा हूँ कि,
मैं भी नहीं जानूँ कि मैं, जो कह रहा हूँ कि,
मैं भी नहीं जानूँ कि मैं, जो कह रहा हूँ कि,
मैं भी नहीं जानूँ कि मैं, जो कह रहा हूँ कि,
मैं भी नहीं जानूँ कि मैं, जो कह रहा हूँ कि,
मैं भी नहीं जानूँ कि मैं, जो कह रहा हूँ कि,
मैं भी नहीं जानूँ कि मैं, जो कह रहा हूँ कि,
(३)

यह विधि पार पेशोन्नी वनगुता दूत भी खुलाश को,
दूरपो जनो धनुष से गर वल्ल मुगट हथ को।
घर घर जहाँ बात मोन ऐसी राजधानी,
पेटन तिद्धि लक धक बाप न राख मानी।
पुर मन्दिर गिरी धन्दर मुन्दर नशि गई,
रावण रणनाम दूँदो बहूँ न सोय पाई।
तय बहो यह लेखिक सगरी नगरी उबक लोखे,
उहाँई ले बाप रामहि जनकी दूँद दीजे।
कैधो दण्डक्य अंध इहाँई ले मारो,
कैधो रघुशेर आगे बाँध रिपुहि डारो।
यह विधि बल अपनो कवि सोचत विष माही,
नन्ददास प्रभु की मोहि ऐसी आइस नाही।

एक पद में नन्ददास ने 'रामकृष्ण' में अभिन्न भाव के प्रदर्शन काये हैं—

रामकृष्ण करिये निशिभोर

वे अवधेश धनुष घरे वे व्रत जीवन माखन चोर ।

उनके छत्र चमर सिंहासन मरत शम्भुइन लक्ष्मन जोर ॥

उनके लकुट मुकुट पीताम्बर गायन के संग नन्दकिशोर ।

उन सागर में शिला तराई उन राखें गिरिधर नखकोर ॥

नन्ददास प्रभु प्रपंच तखि भजिये जैसे निरत चन्द चमोर ।

इन पदों की भाषा-शैली में यह मौढ़ता नहीं है जो नन्ददास की अन्य रचनाओं में पाई जाती है। कदाचित् ये पद उनके वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पहले की रचना है। वल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण की अनन्य भक्ति ही साध्य है। जैसा नन्ददास की मौढ़ रचनाओं में प्रकट है। इसलिए रामकृष्ण की अभिन्नता वाला पद कदाचित् सम्प्रदाय में दीक्षित होने से कुछ बाद की रचना है। यदि ये पद प्रामाणिक हैं तो इसमें संदेह नहीं कि वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पहले नन्ददास का सम्बन्ध किसी रामानन्दी सम्प्रदाय से या अथवा वे सेवक-सेव्य-भाव के रामभक्त थे, उसी तरह जैसे गुलामी।

नन्ददास की कुछ रचनाओं में यह प्रकट है कि उन्हें संस्कृत का अच्छा ज्ञान था और वे रसशास्त्र में भी पारंगत थे। उन्होंने 'दशमस्कंध' में भागवत के दशमस्कंध के २६ अध्यायों का अनुवाद उपरिष्ठ किया है, रासपंचाध्यायी ग्रन्थ में वे जगदेव के 'गीतगोविन्दम्' की शैली का अनुकरण कर रहे हैं, नाममाला को उन्होंने 'अमरकोष' के मास' लिखी है। अनेकार्थमंत्रों से भी उनके विपुल संस्कृत शब्दकोष का ज्ञान होता है। स्वयं अपने ग्रन्थों में उन्होंने अपने एक रसिक मित्र का उल्लेख किया है जो संस्कृत नहीं जानते थे, या कम जानते थे और जिनके लिए उन्होंने संस्कृत से अनुवाद उपरिष्ठ किये। दशमस्कंध प्रथम अध्याय में नन्ददास लिखते हैं—



ग्रन्थ किये है तामे चौताई धरी है—रूपमंजरी त्रिया को हीयो । सो गिरिधर निज आलय कियौ ॥”

(पृष्ठ, २६)

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि—

१—रूपमंजरी ग्वालियर की बेटी थी ।

२—वह वैष्णव भक्त थी, श्रीनाथजी की उपासिका ।

३—नंददास से उसकी गहरी मित्रता थी ।

४—वह वीरगादन और कीर्तन में अत्यन्त निपुण थी ।

५—नंददास ने रूपमंजरी ग्रन्थ उसी के लिए किया ।

‘रूपमंजरी’ के अतिरिक्त चार अन्य ग्रन्थों का नाम ‘मंजरी’ पर रखा गया है । इसमें कुछ रहस्य अवश्य है । ‘मंजरी’ शब्द नंददास को विशेष प्रिय है, यही लगता है । परन्तु क्यों प्रिय है, इसका समाधान केवल “प्राकट्यवार्ता” के इस उल्लेख से ही होता है । हो सकता है कि इसी की मित्रता को अमर करने के लिए और अपने सम्बन्ध के कारण इसे प्रसिद्धि देने के लिए नंददास ने रूपमंजरी की रचना की हो । “नंददास” के सम्पादक ने एक नया अनुमान उपस्थित किया है जिसका आधार रूपमंजरी की कथावस्तु है—

“कदाचित् रूपमंजरी का वैवाहिक जीवन असफल था और अन्त में वह कृष्ण-भक्त हो गई थी । ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि उससे घनिष्टता होने के कारण कवि ने उसके वृत्त को प्रकट न किया हो ।”

(पृष्ठ, ६१)

जो हो, नंददास के रक्तिक मित्र के सम्बन्ध में हम अभी पूर्णतया एकमत नहीं हैं ।

बहिर्दृष्ट के लिए अब हमें प्रचुर सामग्री प्राप्त हो गई है । अभी कुछ समय तक हमारे सामने केवल नामादास का भक्तमाल और प्रियादास की रची हुई भक्तमाल की टीकाएँ तथा २५२ वैष्णवन

(१). नन्ददास मधुरभक्ति से उपासना करनेवाले वैष्णव हैं। 'रसिक' का अर्थ रसशास्त्र में निपुण, लौकिक शृङ्गार में लित पुरुष और मधुरभाव का उपासक भक्त—तीनों हो सकते हैं। फदाचित् नामादास ने मधुरभक्ति या 'रागाकृष्ण' के प्रति शृङ्गारात्मक भक्ति होने के कारण ही उन्हें "रसिक" लिखा है।

(२.) उन्होंने ग्रन्थ-रचना की है। रचनाएँ दो प्रकार की हैं—लीलापद और रसगीति ग्रन्थ। नन्ददास के पदों से हम परिचित हो हैं परन्तु 'रसगीति' से शृङ्गार-शास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ मतव्य नहीं है। इस प्रकार के ग्रन्थों के उदाहरण नन्ददास के 'विरहमञ्जरी' और 'रूपमञ्जरी' हो सकते हैं। नन्ददास के काव्य की विशेषता भी बनला दी गई है। तर्जनाद, सरस उक्ति, मन्त्रि-रस-पूर्ण गीति-माधुर्य।

(३) यह नामादास के ग्रन्थ के प्रणयन तक बहुत प्रसिद्ध हो गये थे।

(४) ये रामपुर ग्राम के निवासी थे।

(५) ये 'सुकुल' थे—अच्छे वंश के, या सुकुल जाति के ब्राह्मण।

(६) चन्द्रदास उनके छोटे भाई थे।

यह स्पष्ट है कि जब नन्ददास का यह उल्लेख नामादास ने किया था, तब ये भक्त के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे, रचना भी कर चुके थे, यदि उसकी मात्रा थोड़ी रही हो, परन्तु रहते 'रामपुर' में ही थे। इसीसे यहाँ विठ्ठलनाथ आदि का उल्लेख न होकर उनके नाते उनके छोटे भाई का उल्लेख आया है।

की सं० १७६६ की भक्तमाल की टीका (भक्ति-रस-ग्रन्थ) के विषय में विशेष कुछ नहीं लिखा गया

॥ का आदिभाव नहीं हुआ था, नहीं ते। सेवादास ने संवत् १८६४ में प्रियादास

१ इससे ज्ञान पड़ता है कि तुलसीदास

और नन्ददास का कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य ही था, क्योंकि उसमें तुलसीदास नन्ददास से कहते हैं—

‘तुमझ में मत जाय’

तो नन्ददास उत्तर देते हैं।

जब विध चुके तब आना जाना कैसा।

(दे० श्री दीनदयालु गुप्त का लेख : महाकवि नन्ददास का जीवन चरित्र, हिन्दुस्तानी, जुलाई १९४०)

इन प्रमाण ग्रन्थों के बाद एक दूसरी भेली के ग्रन्थ आते हैं ये हैं तीन वार्ता ग्रन्थ : २५२ वार्ता आशोरवाली और भावनाशली तथा श्री गोसाईजी के चार निम्न सेवकों की वार्ता। इन ग्रन्थों से नन्ददास के जीवन-चरित्र पर पूरा-पूरा प्रकाश पड़ता है, अतएव उन्हें विस्तार पूर्वक उद्धृत करना उचित होगा।

काशीली के विद्याविभाग में ८४ वार्ता की सं० १६६७ श्री शिव प्रति वर्तमान है। उसमें नन्ददास का वृत्तान्त इस प्रकार है—

अब भी गुसाईजी के सेवक नन्ददासजी सनाद्व ब्राह्मण, रामपुरा में रहते, बिनके पद अष्टछान में गाइयत है, जिनकी वार्ता

प्रसंग १

सो ये तुलसीदासजी के भाई सनोदिया ब्राह्मण होते। सो तुलसीदासजी सो बड़े भाई, और छोटे भाई नन्ददासजी हैं। सो ये नन्ददासजी पड़े बहुत होते।

तुलसीदासजी सो रामानन्दीन के सेवक होते। सो नन्ददासजी को रामानन्दीन को सेवक करवायो। सो उन नन्ददास में लौकिक विषय में प्रीति होती। सो बहुत भैया नाचें सो तहाँ जावके डाँके रहे, सुनो लगे। सो तुलसीदासजी नन्ददास को बहुत सगुण्ठाये को अहाँ तहाँ तुम मति बेटिओ बरे। सो ये नन्ददास मानते नाही।

सो बहुत दिन से एक संघ गुरु में बहरो। सो भी रणभेदकी के दरदर को ओ डारवाजी को बहरो। तब नन्ददास ने मन में विषयी

श्री—बने तो मैं हूँ ऐसे संघ में श्री रणछोड़जी के दरशन करि आऊँ । तब नन्ददासजी ने तुलसीदासजी को कस्यो, जो तुम कहो तो मैं या संघ में श्री रणछोड़जी को दरशन करि आऊँ, तब तुलसीदासजी ने नन्ददासजी को बहोत समुझायो श्री—रु वही मति जान, मार्ग में दुःख बहोत है । अनेक दुःख है । जो—जायगो तो तू भूट होय जायगो । ताते रु भी रणछोड़जी ताई न पहुँच सकेगो, बीच ही में रहेगो । ताते श्री रघुनाथजी को स्मरण कर अपने घर में बैठो रहे ।

तब नन्ददास ने तुलसीदासजी को कस्यो जो—मेरे तो श्री रघुनाथजी हैं, परि मैं एक बार रणछोड़जी के दरशन को अवश्य करिके आऊँगो । तुम कोटि उपाय करो परि मैं न रहूँगो ।

तब तुलसीदासजी ने खान्यो जो—यह न रहेगो । अब संघ में श्री—मुखिया सरदार हतो ताके पास नन्ददास को लेके तुलसीदासजी गये । और मुखिया को नन्ददास की मलापन तुलसीदासजी ने दीनी, जो—यह नन्ददास तुमारे संग आवत है । ताते तुम मार्ग में बाकी खली राखियो । ऐसी करियो जो—इहाँ फेरि नन्ददास आवे, काहु गाम में रहि न जाय ।

तब वा मुखिया ने कस्यो जो—आछो, या बात की चिन्ता मति करो । या पाछे यह संघ चल्यो, जो वाके संग नन्ददास हु चल्यो । सो बहुत दिन में यह संघ मधुराजी में आय पहुँच्यो । तब संघ तो मधुपुरी में रह्यो, और नन्ददास तो मधुपुरी की शोभा देखत देखत विधांत ऊपर गये । सो वहाँ अनेक स्त्री पुरुष स्नान करत देखे, और सुन्दर स्वरूप के देखे सो नन्ददास तो मन में देखि के बहुत ही मोहित भये । और मन में विचार कियो जो—ऐसी जगह में बहुत दिन रहिये तो आछी है । सो या मति नन्ददास अपने मन में सुमाये ।

ता पाछे नन्ददास ने अपने मन में यह विचार कियो जो—एक बार श्री रणछोड़जी के दरशन करि आऊँ । ता पाछे आइके विधांतपाट ऊपर रहेंगे ।

तब वा लोड़ी ने आरके नन्ददास सो कह्यो जो—तुम इहाँ हमारे द्वार पे क्यों बैठे हो ! तब नन्ददास ने वा लोड़ी सो कह्यो जो—मैं तेरी बहू को एक बार मुख देखूँगो ता पाछे बलवान करूँगो, तब भाऊँगी । तब वह लोड़ी यह सुनिके अपनी बहू पास गई । और यह सच बात बहू सो कही जो—वह नाइरा तो तिहारो मुख देखि को आयगो । तब बहू ने लोड़ी सो कह्यो जो मैं बाको अपने मुख दिखाऊँगी नाहीं । वह तो आपहीते उठि आयगो ।

सो ऐसे ही नन्ददास को हू सांज पढ़ि गई × × × सो वा माँति सो लोड़ी ने अपनी बहू सो कह्यो जो जीवमात्र के ऊपर दया रखनी । ताते नाइरा प्रातःकाल को भूखयो प्यासो पैठ्यो है, सो यह बात आड़ी नहीं है । तब वह बात बहू के हिरदे में आई । पाछे पाछे वा लोड़ी के संग बहू द्वार ऊपर गई । तब नन्ददास बाको मुख देखि के उठि गये ।

सो वा माँति सो वे नन्ददास नित्य आवे सो बाको मुख देखिके चले बांग । तब बाके पाछे घर के धनी चञ्ची ने सुनी—जो यह नाइरा हमारे घर बाँहो देखवे को आवस है । तब वा चञ्ची ने आवके नन्ददास सो कह्यो जो तुम हमारे घर के द्वार पर नित्य आवत हो, सो हमारी जगत में हाँसी बहोते होत है ।

तब नन्ददास ने वा चञ्ची सो कह्यो जो—मैं तुममें माँगत नहीं, बहुत तुमारे विगत नहीं । ता पाछे और तुम कहत हो मोर्छो, तो मैं तुमारे मारे मरूँगो ।

तब यह नन्ददास के बचन सुनि के यह चञ्ची डरायो, जो अब बाँहें में बोलूँगो तो—यह नाइरा इत्या देवगो, सो बहुत कदे नाहीं । और नन्ददास तो बेतेई नित्य आवे, सो बाको मुख देखिके परे बावै ।

ता पाछे कितेक दिन में यह बात सगरे गाम में भई । जो—फलाने पत्नी को बहू को एक नाइरा देखिवे को नित्य आवत है । सो यह बात

तब उन क्षत्री ने विचार कियो जो हम तो या ब्राह्मण के दुल मारे गाम छोड़िके आये । सोहू वह तो हमारे संग ही आयो है । तातो ऐसे जसन होई, जो यह हमारे संग भी जमुनाजी उतर के भी गोकुल न चले तो आछो है, नाही हमारी हँसो भी गोकुलजी में होयगी । और भी गोसाईंजी यह बात सुनेंगे तो—यह बात अच्छी नहीं है ?

तब उन मल्लाहन सों कहे, घटवारन सों या क्षत्री ने कहाँ जो हम तुमसो बहुत द्रव्य देंग्यो, परि या ब्राह्मण को पार मति उतारो । पाछे वह क्षत्री नाव में बैठ्यो, तब नन्ददासहू नाव पर बैठन लागे, तब उन मल्लाह ने हाथ पकरि के उतार दियो नाव पै सैं । तब नन्ददास तो भी जमुनाजी के तीर ठाढ़े ठाढ़े विचार करन लागे और वह क्षत्री तो नाव में बैठिके भी जमुना जी के पार भयो ।

ता पाछे वह क्षत्री भी गोकुल में आयके, लोढ़ी कों एक ठोर बैठान के, याके पास सब वस्तुभाव धरिके आप हीनों जने भी गुसाईंजी के दरशन को आये । सो भी नवनीतप्रियजी के राजभोग के दरशन के ता पाछे अनोसर करायके भी गुसाईंजी अपनी बैठक में पधारे । तब इन तीनों जनेन ने भेट धरी, और दण्डवत कीनी ।

तब भी गुसाईंजी ने पूछी जो वैष्णव ! कब के आये हो । तब इन बही जो महाराज अब ही आये हैं । भी नवनीतप्रियजी के राजभोग का आरती के दरशन आपनी दयाते करे हैं । अब भी गुसाईंजी कहे जो आज तुन प्रसाद रहा हो लीओ अब बैठो ।

ऐसे आशा दे भी गुसाईंजी आप तो भोजन कों पधारे । ता पाछे आचमन करिके अपनी जूठन की दातरि वा क्षत्री को धरी । सो पार दातर भी गोसाईंजी ने उनके आगे धरी ।

तब या वैष्णव ने भी गुसाईंजी सों विनती कीनी जो महाराज हम तो तीन ही जने हैं । और खाने चार पाती कौन कौन पा रही है ।

तो और वैष्णव कोई हीमत नाही ।

तब तो नन्ददास प्रसन्न होकर भी जमुनाजी को दण्डवत् करिके भी गोकुल को दंडवत् करि नाव में बैठिके पार आये। और आयेके भी गुसाईजी को दर्शन करिके साष्टांग दंडवत् करी। सो दर्शन करत ही नन्ददास की बुद्धि निरमल होय गई।

तब सो भी गुसाईजी सो हाथ खोरि धिनती करी जो महासंज में सो जबतें जनम पावो, तबतें विषय करत ही जनम गयो। और आप तो परम कृपालु हो, मेरे ऊपर कृपा करिके मोकों अपनी शरण लीजे।

सो ऐसे दैन्यता के वचन नन्ददास के मुनिके श्री गुसाईजी बहुत प्रसन्न भये। तब भी गुसाईजी भीमुख तें आज्ञा दिये जो नन्ददास, जाओ, स्नान करिके अपरस ही में इहाँ आइयो।

तब नन्ददास वैसे ही स्नान करिके अपरस ही में भी गुसाईजी के पास आये। भी गुसाईजी ने नन्ददास को नामनिवेदन (भावात्मक रूप से) करवायो। तब भी गुसाईजी को स्वरूप नन्ददास के हृदय दृढ़ भयो, ता समे नन्ददास ने यह कीर्तन कियो सो पद, राग शिलावलि 'अयति भीरुकिमोनाय पदमावती-प्राणपति विप्रकुल-छत्र धानन्दकारी'।

नन्ददास ने कीर्तन गायो। सो मुनिके भी गुसाईजी बहुत ही प्रसन्न भये। ता पाछे भी गुसाईजी नन्ददास को आज्ञा दीनी—तेरी महाप्रसाद की पातर घरी है, सो जाइके महाप्रसाद लेवो।

सो नन्ददास आइके महाप्रसादी रसोईघर में जाइके भी गुसाईजी की जड़न को प्रसाद लेन लागे। सो लेत ही स्वरूपानन्द को अनुभव होन लग्यो। सो नन्ददास तो देह को अनुसंधान भूल गये, और जहाँ के वहाँ बैठि रहि गये। सो हाथ धोयवे की हू मुधि न रही।

जब उरयापन को समय भयो, तब भीतरिया ने आइके भीगुसाईजी से कह्यो—जो महाराजाधिराज—नन्ददासजी तो महाप्रसाद लेके उड़

ता पाछे प्रात भये श्रीनवनीतप्रियजी के मंगला के दर्शन करिके, गृहकार राजभोग करिके भी गुसाईजी श्रीनाथजी द्वार पधारे, और नन्ददास कोहु संग लियो। सो उत्पादन के समय श्री गिरिराज आइ पहोचे। श्री गुसाईजी तो न्हाय के मन्दिर में पधारे।

समो भयो तब दरशन को टेरा खुल्पो। सो नन्ददास भीगोवर्द्धननाथ के दर्शन करिके बहुत प्रसन्न भये। ता समे नन्ददास ने यह कीर्तन गायो। सो पद—

राग नट—सोइत सुरंग दुरङ्ग पाग ललना कैसे लोइन लोने०।

यह कीर्तन नन्ददास ने गायो, सो श्री गुसाईजी मन्दिर में सुने। पाछे टेरा खँचि लियो। ता पाछे परमानन्द में नन्ददास ने बैठे-बैठे औरहु कीर्तन किये। पाछे संध्याति के दर्शन खुले तब नन्ददास ने दर्शन करिके यह कीर्तन गायो। सो पद—

राग गोरी।

१. मनते सखन संग गायन के पाछे-पाछे आवत०।

२. बनते आवत गोरी०।

३. देखि सखी हरि को पदन सरोज०।

४. नन्द महरि के मिप ही मिप भावे गोकुल की नारी०।

सो या माँति नन्ददास ने बहुत कीर्तन किये।

ता पाछे नन्ददास ६ मास पर्यंत सूरदास जी के संग परासोली में रहे, पाछे भी गोकुल में रहे। सो श्री गुसाईजी नन्ददास ऊपर सदा प्रसन्न रहते। वे नन्ददास ऐसे कृपापात्र भगवदीय रहे।

प्रसंग ३

और एक समय भी मधुराजी को एक संघ पूरन को चल्पो, गया भाद करिवे को। ता संघ में दस पाँच वैष्णवहु हते। सो कितेक दिन यह संघ पूरन को चल्पो, काशीप्री आइ पहुँच्यो।

तब तुलसीदासजी ने तुलसी जी को संत खाने है। तब का संत ने तुलसी-
दासजी ने खाने के दूध को एक नन्ददास नाम का दे दिये हैं, तो
अब तुलसी जी ने तुलसी जी को दे दिये हैं। तो तुलसी जी ने दे दिये हैं।

तब एक वैष्णव ने कहा कि तुलसीदासजी एक नन्ददास तो भी तुलसी-
जी को दे दिये हैं। तो वह नन्ददास वदने तो खाने दिये हैं, तो
अब तो वह ही तुलसीदास नाम का दे दिये हैं।

तब तुलसीदासजी अपने मन में विचार—एक तो बड़ी नन्ददास है,
तो भी तुलसीजी को दे दिये हैं। तो अब तो उनको मेरी टिप्पणी
लगेगी।

तब तुलसीदासजी ने उन वैष्णव को कहा कि मैं तुलसी एक पत्र देऊँ,
ताही पत्र तुलसी नाम का दे दिये हैं।

तब उन वैष्णव ने तुलसीदास जी को कहा कि कल मेरे मनुष्य भी
गोकुल को चलेगी। तो तुलसी जी पत्र देनी होय तो लिख के दे
दिये। तब तुलसीदास ने ताही छे पत्र लिख के दे दिये,
कियो। तब लिख्यो कि नू पतिव्रत धर्म छोड़ि नन्ददास धर्म लियो,
तो आदो नही कियो। अब नू छात्र तो फेरि तोंको पतिव्रत धर्म
प्रताऊँ।

यह पत्र तुलसीदासजी ने वा वैष्णव के हाथ दियो। तो वह पत्र
अपने पत्र में धरि के वा वैष्णव ने फासिद के हाथ दियो। तो वह पत्र
लेके भी गोकुल आयो। तब फासिद ने दंडवत करि के ये पत्र भी तुलसी-
जी के आगे धरे। तब उन पत्र में नन्ददास के नाम को वो पत्र हतो
छो निकल्यो। तब भी तुलसीजी ने वह पत्र पाँच के नन्ददास को बुलाई
के दियो।

तब नन्ददास ने वह पत्र लेके गँव्यो। पाँच वा पत्र को प्रतिकार
लिख्यो तो मेरो तो प्रथम रामचन्द्रजी सौ विवाह भयो हुतो। तो बीच में
कृष्ण दूरी आइके लूटि ले गये। तो रामचन्द्रजी में जो बल होतो
तो भी कृष्ण वैसे ले जाते। और भी रामचन्द्रजी तो एक पत्नीव्रत

हैं। सो दूसरी पत्नीन कूँ कैसे सँभार सकेंगे ? एक पत्नीहूँ बराबर सँभारि न सके, सो रावण हरिके ले गयो। और भीकृष्ण तो अनन्त अवलान के स्वामी हैं, और इनकी पत्नी भई पाछे कोई प्रकार को भय रहे नाहीं है। एक कालायच्छिन्न अनन्त पत्नीनकुं मुख देत हैं। जाओ मैंने भीकृष्ण पति कीने हैं। सो जानोगे। सो मैं तो तन, मन, धन यह लोभ, परलोभ भीकृष्ण को दीनों है। अब तो मैं परवश होइके परयो हूँ।

ऐसो नन्ददास ने तुलसीदासजी को पत्र लिख्यो। तामें यह पद लिख्यो। सो पद—

राग आषावरी—१. कृष्ण नाम जवते भवण मुन्यो री आली० ।

यह कीर्तन नन्ददास ने सा पत्र में लिखिके वह पत्र काशिद को सौंप दियो। सो वह काशिद कितेक दिनन में काशीजी में आयो। सो ये पत्र सब वैष्णवन को दिये।

तब उन वैष्णवन ने वह नन्ददास को पत्र बाँचि के तुलसीदासजी को
 भुलाय के दीनो । पाछे तुलसीदासजी ने नन्ददास को पत्र बाँचि के अपने
 मन में कह्यो की अब नन्ददास इहाँ करहू न आवेगो । ऐसी जानि के
 तुलसीदास अपने घर आवे ।

सो ये नन्ददासजी भी गुणार्द्धी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय भवे
जिनको भी गुणार्द्धी के स्वरूप में ऐसी दृढ़ भाव हतो ।

प्रसंग ४

और एक समय तुलसीदासजी ने विचार किया जो नन्ददास भी गोकुल में है, तो मैं आर के लिये लाऊँ। यह विचार के तुलसीदास भी काशीमें चले, तो द्वादश दिन में भी मथुराजी में आ पहुँचे।

तब मधुराभी में । तब काशी में आगे
है, सी तुम । पगो ! तब काटू ने

बढ़ो जो एक नन्ददास तो आइके भी गुसाईंजी को सेवक भयो है, सो तो गोकुल होयगो, या गिरिराज होयगो ।

तब तुलसीदासजी प्रथम तो भी गोकुल आये । सो भी गोकुल की शोभा देखि के तुलसीदासजी को मन बहुत ही प्रसन्न भयो । पाछे तुलसीदासजी मन में विचारे जो एखो स्थल छोड़िके नन्ददास कैसे चलेगो ?

तब तुलसीदासजी ने तहाँ पहुँचो जो एक नन्ददास ब्राह्मण है, सो यहाँ होइगो ! तब पाहू ने कही, जो एक नन्ददास तो गुसाईंजी को सेवक भयो है । सो तो भी गुसाईंजी तो भीनाथजी द्वार गये हैं, सो उहाँ ही होयगो ।

तब तुलसीदासजी फेर मथुरा में आयेके भी यमुनाजी के दर्शन करे, पाछे यहाँ ते भी गिरिराजजी गये । सो यहाँ पराशोली में तुलसीदासजी नन्ददासकू मिले ।

पाछे तुलसीदास जी ने नन्ददास से कही जो हम हमारे संग जाओ । सो गाम दूरे तो अयोध्या रहो, पुरी दूरे तो काशी में रहो, पर्यन्त दूरे तो चित्रकूट में रहो, बन दूरे तो दंडकारण्य में रहो । ऐसे बड़े-बड़े नाम भी रामचन्द्रजी ने पवित्र दिये हैं ।

तब नन्ददास ने उत्तर देयकेकु ये पद गायो । सो पद—

जो गिरि दूरे तो बसो भी गोवर्द्धन०

पाछे नन्ददासजी तुलसीदासजी को मिलि के भीनाथजी के दर्शन करायेकू गये । तब तुलसीदास हूँ उनके पाछे-पाछे गये । जब भीमोवर्द्धन-नाथजी के दर्शन करे, तब तुलसीदासजी मायो नमायो नहीं । तब नन्ददासजी जानि गये, जो ये भीरामचन्द्रजी बिना और दूसरे को नहीं नमै हैं । नन्ददास ने मन में विचार कीनो जो यहाँ और भी गोकुल में इनको भीरामचन्द्रजी के दर्शन कराऊँ । तब ये भीरामचन्द्रजी को प्रभाव जानिने । पाछे नन्ददास ने भीमोवर्द्धननाथ से विनयी की ।

जो दोहा—

कहा कहूँ लुबि आब की, भले बने हो नाथ
तुलसी मस्तक तब नमै, घनुष बाण लो हाथ

यह बात सुनिके भीनाथजी को भी गुसाईंजी की कानते विचार
भयो, जो भी गुसाईंजी के सेवक कहै, सो हमकुं मान्यो सहिए ।

पीछे भीगोवर्द्धननाथजी ने भीरामचन्द्रजी को रूप धरिके
तुलसीदास जी को दर्शन दिये । तब तुलसीदासजी ने भीगोवर्द्धननाथजी
को साष्टांग दंडवत करी ।

जब तुलसीदासजी दर्शन करिके बाहर आये, तब नन्ददास
भी गोकुल चले । तब तुलसीदासहू संग संग आये । तब आयेके
नन्ददास ने भी गुसाईंजी के दर्शन करि साष्टांग दंडवत करी और
तुलसीदास ने दंडवत करी नाहि ।

पाछे नन्ददास को तुलसीदास जी ने कही जो जैसे दर्शन तुमने
प्राप्त कराये हैं वैसे ही प्राप्त करावो । तब नन्ददासजी ने भी गुसाईंजी
को विनती करी—ये मेरे भाई तुलसीदास हैं । सो भी रामचन्द्रजी
बिना और कुं नहीं नमै हैं ।

तब भी गुसाईंजी ने कही जो तुलसीदास जी, बैठो ।

सा सभे भी गुसाईंजी के पाचमें पुत्र भी श्युनाथजी वहाँ ठाढ़े
हुते, और उन दिनमें भी श्युनाथजी को विवाह भयो हुतो । तब
भी गुसाईंजी ने कही जो रामचन्द्रजी । तुमारे सेवक ध्याये हैं, इनको
दर्शन देवो । तब श्युनाथलालजी ने तथा भी ध्यानकी पट्टी ने
स्वरूप धरिके दर्शन दिये । तब तुलसीदासजी ने साष्टांग दंडवत
करी ।

पाछे तुलसीदासजी दर्शन करिके बहोत प्रसन्न भये । और यह पद
गायो । सो पद—

बरनो अवधि भी गोकुल धाम ।

प्रां सरजू वहाँ यमुना एक ही नाम ।

ता पावे, तुलसीदासजी ने भी गुणार्द्धजी से दंडवत करके बन्दी जो मङ्गराज नन्ददास तो पहले बन्दी चिरवी हुनो, सो अब पावो बन्दी बनन भक्ति भई है। ताको कारण कहा है।

तब भी गुणार्द्धजी ने तुलसीदासजी से बन्दी जो नन्ददास उचन पाव हुनो, पावे पुष्टिमार्ग में आपके प्राप्त भये। और अब ब्रजन अवस्था पावो सिद्ध भई है। सो अब ये दृढ़ भये हैं। तब भी गुणार्द्धजी के भीमुख के बचन सुनिके तुलसीदासजी प्रमथ होय भी गुणार्द्धजी को दंडवत करिके पाछे आप बिदा होय काशी आये।

सो ये नन्ददासजी भी गुणार्द्धजी के ऐसे कृपाराज भगवदीय हुते। जिनके कहते भीगोवर्द्धननाथजी को तथा भी खुनायलालजी को भीरामचन्द्रजी को स्वरूप घरिके दर्शन देने पड़े।

प्रसंग ५

सो एक दिन नन्ददास के मन में एसी आई जो जेसे तुलसीदासजी ने रामायण भाग किये हैं, तेसे हमहूँ भीमद्भागवत भाग करें। पावे नन्ददास ने भीमद्भागवत दशम भाग संपूर्ण कियो।

तब मथुरा के सब पंडित मिलिके भी गुणार्द्धजी से बिनती कीनी, जो महाराज, हम भी भागवतकी कथा कहिके निरवाद करत हते, सो हमारे सेवक नन्ददासजी ने भाषा में भी भागवत करी है। सो अब हमारी कथा कोई न सुनेगो। ताते अब हमारी जीविका तो गई। सो अब आपके हाथ उपाय है।

तब भी गुणार्द्धजी ने नन्ददास को सुलायके कहा जो नन्ददास हमने जो भीमद्भागवत भाषा में कीनी है, सो इन ब्राह्मण की जीविका में हानि होत है। तावों हम ब्रजलीला तो पंचाध्यायी ताँई की राखी और सब भीजमुनाजी में पधराय दो।

सो नन्ददास ने भी गुणार्द्धजी की आज्ञा प्रमाण मानिके ब्रजलीला ताँई (भागवत) राखी, और सब भीजमुनाजी में पधराय दीनी।

सो वे नन्ददासजी भी गुसाईजी के ऐसे आशाकारी और बड़े कृपावाज होते ।

प्रसंग ६

और एक सभे अकबर पातशाह और वीरवल भी मधुगजी आये, सो वीरवल श्री गुसाईजी के दर्शन को आये । सो आनाथजी द्वार भी गुसाईजी पधारें होते । और श्री गिरिधरजी घर होते सो—वीरवल श्री गिरिधरजी के दर्शन करिके अकबर पातशाह के पास आये । तब पातशाह ने पूछी—जो वीरवल ! तू कहाँ गया था ? तब वीरवल ने बहो जो दीक्षितजी के दर्शन को थी भोक्कुल गया था । सो श्री गुसाईजी तों आनाथजी के दर्शन को श्री गोवर्द्धन पधारें हैं, और उनके पुत्र भी गिरिधरजी घर ये, सो उनके दर्शन करके आया हूँ ।

तब पातशाह ने वीरवल सो बहो जो—दिन दो में हम भी श्री गोवर्द्धन चलेंगे, वहाँ से तुम जाकर दीक्षितजी के दर्शन कर आना ।

ता पाछे दिन दोय में अकबर पातशाह के डेरा गोवर्द्धन, मानसीगढ़ा पर भये । तब वीरवल भी गोवर्द्धननाथजी के दर्शन को गोगलपुर आये । सो दर्शन करिके श्री गुसाईजी को दंडवत् करिके ता पाछे अपने डेरा आये ।

पाछे नन्ददास ने सुनो जो—अकबर पातशाह के डेरा गोवर्द्धन मानसीगढ़ा पे भये हैं । सो अकबर पातशाह के एक लोड़ी हती । सो वह भी गुसाईजी की सेवक हती । ताके ऊपर श्री गोवर्द्धननाथजी बड़ी कृपा करते । वहाँ दर्शन देते ।

वा लोड़ी सों और नन्ददास सों बड़ी प्रीति हती । सो नन्ददास वा लोड़ी सों मिलिने को मानसीगढ़ा पे आये । सो तहाँ वा लोड़ी को झेंडन लागे । सो वह लोड़ी एकांत ठौर में बिलछू पे बृद्धन की लतान की तर्रें, रखेई करत हती । सो रखेई, ~ ~ ~ रखेई हो । श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु पधारें हुते ।

की देखे। सो दरशन करिके नन्ददास बहोत ही प्रसन्न भये। और बहो बो—याके बड़े भाग्य है।

ता पाछे नन्ददास एक वृक्ष की ओट में ठाढ़े रहिके यह कीर्तन गायो। सो पद—

राग तोड़ी—विष सगह्व चितवति दुरि मुरि गोरी बहाते सपानी॥
यह कीर्तन तहाँ नन्ददास ने गायो। तब जाने बो—इहाँ नन्ददास आये हैं। तब वा लोड़ी ने चारों ओर देखे। तब देखे तो एक वृक्ष की ओट में नन्ददास ठाढ़े हैं। तब वा लोड़ी ने नन्ददास को बहो, बो तुम ऐमे दिग्ग के क्यों ठाढ़े हो? मेरे पास क्यों नहीं आबत हो?

तब नन्ददास ने कही—ओ राजभोग को समो हनो, श्रीगोवर्द्धन-नाथजी आयोगवे पधारे हते, ताते हो इहाँ ठाढ़ो होय राहो।

ता पाछे भोग सराय के अनोखर कराय के बहो—ओ मैं तुमहीं कही नाही सकत हो, परि श्रीनाथजी की महाप्रसाद है, सामग्री रूप की सामग्री है। तामे तुमारी मन प्रगभ होय सो सेउ। कारतेँ ओ तुम आबत हो।

तब नन्ददास ने बहो ओ अब तो मैं रचक-रचक सक सामग्री लेऊँगे। तब उन दोउ जनेन ने प्रगभता सो महाप्रसाद लियो। ता पाछे आचमन करिके बैठे। तब वा लोड़ी ने नन्ददास को बहो ओ अब इहाँ ते बहुत न जानो होय तो आओ है। यहाँ ओ मानसंगम है। यह ओ गिरिधर प्रभुन की दया तेँ स्थल प्राप्त भयो है। तातेँ अब मैं कहूँ देख मे न चार्जे सो आओ है, और अब मः तुमारी संग होय तो आओ।

तब नन्ददास ने लोड़ी को बहो ओ प्रभु ऐसे ही करेगे। ता पाछे लोड़ी ने बहो ओ अब इन अग्निनि की लौकिक को देखनो नाही है।

पाछे नन्ददास रात्रिकी आने स्थान मानसंगम के आब रहे। और प्रगभता श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन की आये, ओ गोवर्द्धननाथजी के दरशन दिने। और ओ गुनार्द्धी के दर्शन दिने।

ता पाछे अकबर पातशाह के पास तानसेन रात्रिको गाववे आये । सो तहाँ नन्ददास को कियो पद तानसेन ने गायो । सो पद—

—राम केदारो—देखो री, नागर नट नृत्यत कालिंदी के तट० x x नन्ददास गावत वहाँ निपट निकट ।

यह नन्ददास को कीयो पद सुनि के अकबर पातशाह ने तानसेन सो पूछी ओ—बिसने यह पद बनाया है, सो कहाँ है ? तब वीरबल ने अकबर पातशाह सो क्यो ओ—साहब ! वह तो यहाँ ही है, भीनाथजी द्वार में रहता है । बड़ा कवि और भगवदीय है ।

तब देसाधिपति ने वीरबल सो क्यो—इसी घड़ी उनको यहाँ बुलावो । तब वीरबल ने पातशाह सो क्यो ओ—साहब, वह तो इस भाँति से तो यहाँ न आवेंगे । मैं कहलाकर लिवा लाऊँगा ।

ता पाछे दूसरे दिन वीरबल गोपालपुर आये । तब भी गुसार्देबी के दरशन किये । ता पाछे नन्ददास से वीरबल ने क्यो ओ नन्ददासजी तुमको अकबर बादशाह ने बुलाये हैं । तब नन्ददास ने वीरबल सो क्यो—मोंको अकबर पातशाह सो कहा प्रयोजन है ? मोंको कहु द्रव्य की चाहना नाहि । ओ—मैं आऊँ । और मेरे कहु द्रव्य नाहीं ओ अकबर पातशाह सेतयोगो । ताते हमारो कहा काम है ?

तब वीरबल ने क्यो ओ—तुम न चलोगे सो अकबर पातशाह ही तुमारे पास आवेगो ।

तब नन्ददास ने कही ओ तुम इहाँ बाको मति लावो । यहाँ भीड़ को काम नाहीं है । ताते मैं सेनआरती पाछे भी गुसार्देबी सो दखवत करिके मानसीगंगा आऊँगो ।

पाछे नन्ददास सेनआरती के दरशन करि भी गुसार्देबी से दखवत करिके विश होय के मानसीगंगा आये । सो नन्ददास को देखि पातशाह ने सम्मान करि के बैठाए ।

ता पाछे अकबर पातशाह ने नन्ददास सो क्यो ओ तुमने द बनायो है सामे तुमने कहाँ है ओ नन्ददास गावे तहाँ निपट ।

तो इनमें नन्ददास को भी जो कुछ कहो उसे—कोन मति थी
कि कह जाये ?

तब नन्ददास ने पातसाह को कपों को मेरे बड़े को तुमको भिराव
न दारो। तो गुमारे पर मे कलानी (कलंगरी) लोड़ी है तभी
मम पुत्र सेउ, मम बह जानन है ।

तब अकबर पातसाह ने बोम्बन को तो नन्ददास के पास बैठाने,
और आप अपने डेरा में जायेंगे या लोड़ी को पूर्ण, जो यह बात को
यह नन्ददास ने गायो है, ता ताको अमिप्राय कहा है ।

तब यह बचन पातसाह के सुनिके यह लोड़ी पड़ाद खाव के
गिरि पड़ी, सो देह छूटि गई । सो यह लीला में जायेंगे प्रात मई ।
तब देसाधिरति नन्ददास के पास दारे धाये । सो इहाँ आपके देखे तो
नन्ददास की हू देह छूटि गई है । सो एउ लीला में जायेंगे प्रात मये ।

तब अकबर पातसाह को बड़ी आश्चर्य भयो । तब जाने बीरबल
सो पूछी—जो इन दोउन की देह क्यों छूटि गई ? तब बीरबल ने
पातसाह से कहा जो सादर इन अपने धर्म राख्यो । काहे तें यह बात
बतायवे मैं न आवे, कहिय मैं न आवे । ताको या बात को तो यही
उपाय है ।

ता पाछे अकबर पातसाह अपने डेरान में आयो । ता पाछे यह बात
वैष्णवन ने सुनी, सो आपके यह सनाचार सब भी गुमारेको सो बड़े,
जो, महाराज ! नन्ददासजी ने तो मानसीगंगा पर या रीति सो देह
छोड़ी ।

तब भी गुमारेजी ने भीमुखने बरोत ही सराहना करी । जो वैष्णव
ऐसे ही अपने धर्म राख्यो चाहिये । जो और के आगे कहनो नाहिं ।
सो यह नन्ददासजी और यह लोड़ी ऐसे भगवदीय हते । सो दोउ अनेन
ने अपने धर्म गोप्य राख्यो ।

सो यह लोड़ीहू ऐसी भगवदीय भई और नन्ददासजी हू भी गुमारेजी
के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते । इनके ऊपर भी गुमारेजी सदा

प्रसन्न रहते । और अपने स्वरूपानन्द को वैभव दिखायो । ताते उनकी वार्ता कहाँ ताई लिखिये । ता वार्ता को पार ना आवे ऐसे भगवदीय भये ।”

ऊपर की वार्ता से हम नन्ददास के सम्बन्ध में निम्नलिखित निश्चित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं—

प्रसंग १—(१) तुलसीदास और नन्ददास में निकट का सम्बन्ध था । वे भाई थे, कैसे भाई, यह नहीं लिखा । ज्ञाति उनकी सनातन ब्राह्मण थी ।

(२) वे बड़े रक्तिक थे ।

(३) तुलसीदास उन्हें बराबर नियंत्रण में रखते, और खोज-खबर लेते रहते, इसलिए वे आयु में उनसे छोटे अवश्य रहे होंगे ।

(४) उनका स्वभाव बड़ा उच्छुद्ध और हठी था । तुलसीदास के समझाने पर भी वे अयोध्या नहीं ठहरे, और जब सप मथुरा डहर गया, तो अकेले ही आगे चल पड़े । दुषाण्यी की वार्ता से भी यही सिद्ध होता है । उन्हें लोक लज्जा थी ही नहीं ।

(५) विठ्ठलनाथजी के प्रथम दर्शन का ही उन पर चमत्कारी प्रभाव पड़ा और वे उन्हीं द्वारा पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित हुए ।

प्रसंग २—वे शीघ्र ही गुंसाईंजी के कृतापात्र हो गये । उन्होंने उन्हें सम्प्रदाय के भेदों से अदगत कराया और विशेष शिक्षा के लिए सुरदास के पास रख दिया । उनके पास वे छः महीने रहे ।

प्रसंग ३—तुलसीदास अनन्य कट्टर रामभक्त थे । उन्होंने नन्ददास को कृष्णभक्ति सम्प्रदाय में दीक्षा लेने से विरत करना चाहा, परन्तु सफल नहीं हुए ।

प्रसंग ४—तुलसीदास गोकुल आये । वहाँ सुरदास और विठ्ठलनाथ ने उन्हें राम-कृष्ण के अभेदत्व से परिचित कराया ।

प्रसंग ५—तुलसीदास के अनुकरण में नन्ददास ने भागवत की भाषा की, परन्तु गुंसाईंजी के कहने से ब्रजलीला पर्यन्त रखकर शेष अलमश कर दी ।

नाम इन तरह पर छाया है किम तरह की भी लेखक आना नाम ही बिम्ब सकता। इन उल्लेखों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि कोई लेखक व्यक्ति गोबुलनाथ के सम्बन्ध में लिख रहा है।”

०. प्रथम में श्रीरामदेव के मन्दिर तुलसी का वर्णन है जो १६६६ ई. में म. गढ़ने की बात नहीं हो सकती। गोबुलनाथजी का समय १५५१ ई. में १६६० ई. तक है। इस प्रकार गोबुलनाथजी बाद की घटना से परिचित नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त एक और स्थान पर उसने १६६६ ई. की घटना तक का उल्लेख है।

२. ‘८४’ और ‘२५२’ वार्ताओं के अनेक रूपों में भी बहुत अन्तर है। “एक ही व्यक्ति अपनी दो रचनाओं में व्याकरण के इन छोटे-छोटे रूपों में इस तरह का भेद नहीं कर सकता।” प्र० माताप्रसाद गुप्त अपने ग्रन्थ तुलसीदास (प्र० १६४२) में कई नये संदेह उपस्थित करते हैं।

१. “वार्ता में पुष्टिमार्ग के लिए शतांशत रूप में मुख्य मुद्राव जान पड़ता है।

२. उसमें कुछ प्रामाणिक घटनाएँ जलत लिली गई हैं जैसे “वार्ता” के अनुसार नरहरगढ़ के राजा आसकरन गोसाईं विठ्ठलनाथजी के शिष्य थे किन्तु नभादासजी का बचन है कि वह कीलदेव के शिष्य थे जो विशेष प्रामाणिक माना जाना चाहिए।”

इसलिए (१६४१ ई०) में प्रकाशित ‘प्राचीन वार्ता-नदश्य, द्वितीय भाग’ में वार्ता की प्रामाणिकता का विशेष अध्ययन उपस्थित किया है। इसके अनुसार

१. वार्ताएँ वास्तव में मौखिक प्रवचन हैं।

२. आजकल जो वार्ताएँ उपलब्ध हैं, उनके मूल रूप से मिलते हैं—एक साधारण वार्ता, दूसरी भावनावाली वार्ता, जिनमें एक प्रकार से वार्ता-कथाओं की साम्प्रदायिक दृष्टि से टीका कर दी गई है।

अधिकांश उपलब्ध वार्ता-प्रतियाँ भावनावाली हैं, यद्यपि डॉ० वर्मा द्वारा सम्पादित संस्करण पहले प्रकार की वार्ता पर आधारित था।

३. मूल वार्ताओं के मौखिक प्रवचन का समय सं० १८४२ से सं० १६४५ तक निर्धारित होता है जब कि गुसाईजी का निरोधान हो जाता है और श्री गोकुलनाथजी की उत्कृष्टता का समय आता है।

४. "सं० १६६७ की वार्ता की एक हस्तलिखित प्रति कोंकरोली में उपलब्ध है, अतः कम से कम सं० १६६७ तक वार्ता की पुस्तकों का लिपिबद्ध संस्करण हो चुका था।

५. "‘वार्ता’ के तीन संस्करण हुए हैं। प्रथम संस्करण श्री गोकुलनाथजी के कथा-प्रवचन के मनन का मूल रूप है जो उनके शिष्य-प्रसंगों के समस्त वचनानुसार रूप में प्राप्त होता है। न तो इसमें ८४ और २५२ का वर्गीकरण ही हुआ है और न सभी वैष्णवों की वार्ताएँ ही इसमें लिखी गई हैं। इसे हम सम्प्रदायिक वार्ता-साहित्य कह सकते हैं। इनका समय सं० १९४५ से सं० १६६० तक माना जाता है। द्वितीय संस्करण श्री गोकुलनाथजी के समय और तत्त्व-विवेचन में श्री हरिरायजी द्वारा हुआ। इस समय वार्ताओं का वर्गीकरण और संकलन करते हुए ‘चौरासी’ तथा ‘दो सौ बावन’ वैष्णवों की संख्या का नाम रखा गया। इस समय की वार्ताओं में प्रसंग आने पर ‘श्री गोकुलनाथजी’ के नाम का निर्देश होने लगा, जो श्री हरिरायजी ने अपनी ओर से प्रतिविष्ट किया है।

“इस संस्करण का समय सं० १६६४ से सं० १७३५ तक माना जा सकता है।

“तृतीय संस्करण—श्री गोकुलनाथजी के अनन्तर और श्री हरिरायजी के समय इसका संकलन हुआ। इस समय वार्ता में ऐसे आदर्शक प्रसंग-वाक्य भी सम्मिलित हो गये हैं, जिनके बिना प्रसंग की आधुनिक विदित भी। अपना जो अधिक सम्पीकरण के लिए उपयुक्त

थे। इसी समय श्री हरिरायजी ने अपना 'भावप्रकाश' नामक टिप्पण लिखा, जो वार्ता के हार्द को विशेषता के साथ समझने में समर्थ है। इस संस्करण का समय सं० १७१५ के अनन्तर सं० १७८० तक आता है।

६. “‘भावप्रकाश’ की रचना सं० १७१५ के आस-पास हुई। वार्ता के बाद के संस्करण में इसकी कितनी ही बातें मिला ली गईं होनी।”

ऊपर की विवेचना से उन संदेहों का निराकरण हो जाता है जो डाक्टर श्री घीरेन्द्र वर्मा ने वार्ता के सम्बन्ध में उठाये हैं। डा० माता-प्रसाद का पहला तर्क तो कोई तर्क नहीं है। वार्ता निश्चय ही साम्प्रदायिक ग्रन्थ है, ऐतिहासिक ग्रन्थ के लिए उसका प्रमाण सतर्कता से ही रहता आना चाहिये। हाँ, दूसरा तर्क अवश्य दृढ़ है। परन्तु यदि हम काचित “कीर्तन संग्रहों” को ध्यान से पढ़ें, तो हमें ‘आसकरनशी’ का एक बड़ा विपुल कृष्ण-पद-साहित्य मिलेगा। हो सकता है, वे पहले जन्म के ही ग्रन्थ रहे हों, परन्तु बाद में वे कृष्ण-सम्प्रदाय (बल्लभ-ल) में दीक्षित हो गये हों। कम से कम उनका पद-साहित्य तो उनकी ध्य-भक्ति का ही प्रमाण उपस्थित करता है। वह समय कृष्ण-ल के सम्प्रदाय का था। नन्ददास जैसे रामानन्दी राम-भक्त का जन्म सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये, तो फिर क्या यह सम्भव नहीं है आसकरन भी पहले राम-भक्त रहे हों, फिर बल्लभ सम्प्रदाय में क्षित हो गये हों ?

तीसरी प्रेक्षी के प्रमाण-ग्रन्थ स्रोतों में प्राप्त नहीं। समझी है। वे हैं—

१—रामचरितमानस की हस्तलिखित प्रति, श्री, सं० १९४१

२—वर्णरत्न, लेखक कृष्णदास, सं० १९६७

३—दुर्गरक्ष-महात्म्य, लेखक श्री, सं० १९५७

४—अनुरागीत की हस्तलिखित, लेखक जयचन्द्र, सं० १९७१

५—रत्नावली दोहा-संग्रह ।

६—रत्नावली-चरित, लेखक मुरलीधर, सं० १८२६

अब हम अलग-अलग इन पर विचार करेंगे ।

सोरो में प्राप्त श्री रामचरितमानस की हस्तलिपि प्रतियों में बालकांड और अरण्यकांड की पुष्पिकाएँ इस प्रकार हैं—

“इति श्री रामचरितमानसे सकल कलिकलुपविध्वंसने विमल वैराग्य-सम्पादिनी नाम १.....बासी नन्ददास-पुत्र कृष्णदास देव लिखी धनुष ने काशीपुरी में ।”

(बालकांड की पुष्पिका)

“इति श्री रामायणे सकल कलिकलुपविध्वंसने विमल वैराग्य सम्पादिनी बट मुजन सम्पादे रामवन चरित्र बननो नाम द्वितीयो सोपान अरण्य-कांड समाप्त ॥ ३ ॥ श्री ब्रह्मसीदास गुरु की आश्वीं सो उनके आता सुत कृष्णदास सोरो क्षेत्र निवासी देव लिखित लक्ष्मिनदास काशीपुरीजी मध्ये सन्वत् १६४६ आषाढ सुदी ४ सुके इति ॥”

(अरण्यकांड की पुष्पिका)

‘वर्षफल’ का आरम्भ इस प्रकार है—

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ वर्षफल लिख्यते । कवित्त । गनपति गिरीस गंग गौरी गुरु गीरवान गोपवेश गोकुलेश गोपी गुन गाह के भूमि देव देव दिविगाम घाम देवी देव तात मात पादकंज मंजु सरिस नाह के सूर सोम भौम सौमदेव गुरु दैत्य गुरु शुक्र शनि राहु फेनु बटे पत्ते साह के बालबोध आस कविशस दास कृष्णदास गावतु हो वर्षफल वर्षमंथ आह के ।

अथ सूर्यफल ॥ दोहा ॥

वर्ष लगन रवि बस पितृवज विवाह तिव रोग

कृष्ण चित्त-चिन्ताकुलित करत हरत दुःख भोग ॥ १ ॥

तात अनुज चन्द्रहास बुधवर निरदेसहि भारि ।

लिख्यो अधामति वर्षफल बालबोध संचारि ॥ २ ॥

अन्त इति प्रकाश है—

कीर्ति की मूर्ति धर्माश्रम मंगलय को
 दीप्य बराह भूमि बैदु उ गाई है
 बाही बाग रामपुर स्थान सर कीने तात
 स्थानायन स्थानपुर बाग सुरदाई है
 मुकुल विमंगल में विषय तहाँ बीरगाम
 तामु पुत्र नन्ददास कीर्ति कवि पाई है
 तामु पुत्र हो कृष्णदास वरंगल माया रच्यो
 चूँच होई सोये मम जनि लघुताई है
 सोरह सी छतामनि विद्वान के माँक मई
 अति कोष दृष्टि विद्वान के विद्याता की
 बीजत अपद बड़ लाह बड़ि देवपुत्र
 बूढ़ी गल्ल जम्मभूम रत्नावली माता की
 नारी नर बूढ़े बहु संघ बड़ भाग रहे
 बिन्द मिटे कदरी के दुखद कया ताकी
 अमु नम कृष्ण माय तेरसि सनि कृष्णदास
 वरंगल पूर्यो मई दया बोध दाता की ॥१॥

इति भी कवि कृष्णदास विरचितम् वरंगलम् सम्पूर्णं सम्बत् १६७२
 मार्गतिर कृष्ण तृतिया ३ शुक्रवाक्रे सदसवान नगरे ॥ शुभम् ॥
 शुभम् ॥

सूक्त स्तुति महात्म्य के आरम्भ में इस प्रकार है—

भी गणेशाय नमः । ॐ नमो भगवते बराहाय ॥ अथ कृष्णदास
 सूक्त सूक्त स्तुति महात्म्या लिख्यते सोरठा । गनपति गिरि गिरिश गिरिग
 त्त गुहचरन ॥ बन्दहु पुनि बगदीश छवि बराह महि उदरन ॥ बन्दहु
 लसीदास पितु बड़भाता पद जलज ॥ जिन निज बुद्धि बिलाष
 रच्यो ॥ सानुष भी नन्ददास पितु की बन्दहु चरन रच ॥

धीनो मुञ्च प्रकाश रासपंचदश्याय मनि ॥ बन्दहु चरन जलजात सुमिरि
लहि तिष सुरगली ॥ सकल वंस दुजमूल पिवरन पद सरसिज नमहुँ ॥
रहि सदा अनुकूल कृष्णदास निज असंगान ॥

ग्रन्थ की पुष्पिका इस प्रकार है—

लेखक पाठक्योः शुभं भूयात् ॥ सम्बत् १८७० मिति नातिक वदी ११
एकादशी सुषवासरे । लिखित विषयदाय काराय सोरें मध्ये ॥ श्री ॥ श्री ॥
॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ अभं मुरलीधर कृत छप्यै लिखते ॥ जय जय
आदि बराह छेय संपूर्णम सुहावनि.....रति छप्यै संपूर्णम् ॥
कृष्णदास वंसावली.....नन्ददास सुत हों भरो कृष्णदास मतिमन्द ॥
चन्द्रदास सुवसुत अहं चिरजीवी ब्रजचन्द्र ॥ १० ॥ इति ॥ इति.....
भी भाषा शकर छेय महात्म्य संपूर्णम् सम्बत् १८०६ गिरिवतम
पं० मुरलीधरेण ॥

‘अमरगीत’ वास्तव में नन्ददास का अमरगीत है । उसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

अमरगीत सन्तूरनम्.....नन्ददास भ्राता तुलसीदास को स्याम-
सरवासी सोरोरी मध्ये लिखित कृष्णदास बेटा नन्ददास नाती जीकाराम
के शुक्र श्यामपुरी सनाढ्य.....भरद्वाज गोती सच्चिदानन्द के बेटा
रामायन के करता तुलसीदास दुजे.....रा नन्ददास चन्द्रदास तिनके
बेटा कृष्णदास के बेटा ब्रजचन्द्र पोथी लिखी माष.....। जे चन्द्रवार
सम्बत् १६७८ शुभम् ।

न कियो, सौ यह लीला गाइ पाइ रसपुंजना बन्दे तुलसीदास के
चरना सानुज नन्ददास दुखहरना जिन पिठ आत्माराम सुहाय जिन
सुत रामकृष्ण जस गाए (मे) ये सुवन मम मुख प्रवीना दास कू- 3
मम नाम सीचोना शुक्र सनाढ्य तेज गुणरावी धर्मपुगीय .
बासी बालकृष्ण में उनकर दा (गा) , गु) कर छेय जान मम बास

‘दीहा रतनावली’ में जो तुलसीदास की पत्नी रतनावली (सं० १६५१) के दोहों का संग्रह कहा जाता है, एक भी है जिससे नन्ददास और तुलसीदास के सम्बन्ध पड़ता है—

मोहि दीन्हों संदेश पिय अनुज नन्द के हाथ
रतन समुक्ति बनि पुयक मोहि जो मुमरत रघुनाथ
पं० मुरलीधर का ‘रतनावली चरित’ अत्यन्त प्राचीन प्रमाण नहीं है
भी उससे महत्वपूर्ण प्रमाणों की सत्यता सिद्ध होती है। उसमें नन्ददास
उल्लेख कई जगह है—

तबहि पीत एक दर्द आष। मुह रुविह के जाउ दास
रमारत वैष्णव सो पुनीत। सकल वेद आगम अपोत
अकटीर्थ दिग पाठशाल। तही पढ़ावत विपुल बाण
तहाँ रामपुर के सनाद। मुकुल वंशधर हे गुनाज
तुलसीदास एक नन्ददास। पढ़त करत विद्या-निलास
एक पितामह पौत्र दोउ। चन्द्रहास सपु अरर सोउ
तुलसी आतमारामपूत। उदर कुलासो के प्रभू
गये दोउ से अमर लोह। दादी पोतहि करि लखोइ
बसत जोग भारग समीप। विमर्श कर दिग दी
एक दूसरे स्थान पर इस प्रकार लिखते हैं—

नन्ददास और चन्द्रदास। रहहि रामपुर मानु पाव
दमति बनि जगदाह नाम। लहन सोनु आठहु नाम
पं० रामचन्द्रनम निभ (पं० मुरलीधर चतुर्वेदी के विषय) के हाथ की
लिखी ‘रतनावली चरित’ की प्रति में मुरलीधर के कुछ छन्द भी मिलते
हैं। एक छन्द इस प्रकार है—

एक पितामह लदन दोउ जनमे बुबिगमी
सोउ एहि मुह रुविह पुष्य आये काशी

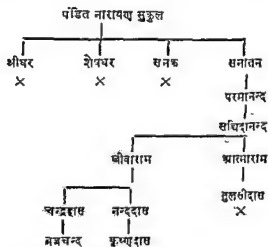
तुलसीदास नन्ददास मते द्वै मुरली घारे ।
 एक मते सियाराम एक घनश्याम पुकारे
 एक बसे सो रामपुर एक श्यामपुर महुँ बसै ।
 एक राम गाथा लिखी एक भागवद् पद कहै

इसी प्रति में कृष्णदास की वंशावली भी लगी हुई है जो इस प्रकार है—

सेत बागइ समीप शुचि गाम रामपुर एक
 लहे पंडित पंडित बसत सुकुलवंश सविवेक ।
 पंडित नारायण सुकुल तामु पुरुष परधान
 भारथो सत्य सनाढ्य पद है तप वेद निधान ।
 शास्त्र शास्त्र विद्या कुशल मे गुरु दोष समान
 महारत्न निज मेदि दिन पाथो पद निर्बान ।
 तेहि सुत गुरु ज्ञानी भये भए पिता अनुहारि
 पंडित भीषर शेषधर सनक सनातन चारि ।
 भये सनातन देव सुत पंडित परमानन्द
 व्यास सरिस शक्त तनय ज्ञासु सच्चिदानन्द ।
 तेहि सुत आत्माराम बुध निगमाश्रम परबीन
 लपु सुत जीवाराम ये पंडित परम सुगेन ।
 पुत्र आत्माराम के पंडित तुलसीदास
 तिमि सुत जीवाराम के नन्ददास चन्ददास ।
 मधि मधि वेद पुरान सब काव्य शास्त्र इतिहास
 रामचरितमानस रच्यौ पंडित तुलसीदास ।
 बल्लभ-कुल बल्लभ भये तामु अनुच नन्ददास
 घरि बल्लभ आचार दिनरच्यौ भागवतराम ।
 नन्ददास सुतहो भयो कृष्णदास मतिमद
 चन्ददास बुध सुत अहे गिरजीवी ब्रजचन्द ।

नन्ददास
इस सारी सामग्री में लगभग एकसूत्रता है, कहीं विशेष विरोध नहीं है। जिन बातों का पता हमें इससे लगता है, वे संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(१) तुलसीदास और नन्ददास चचेरे भाई थे। उनका वंश-वृक्ष इस प्रकार है—



इन्हीं कृष्णचन्द्र ने 'परमल' और 'वंशावली' की रचना की। कृष्णचन्द्र का नाम उन्होंने त्रिभुवनेश्वर से लिया है, उससे पता चलता है कि उनके समय तक कुटुम्ब सम्मिलित रहता था और आपस में हार्दिक था। इन्हीं कृष्णदास के लिए किसी रघुनाथ ने काशी में १५११ ई. के में रामचरितमानस की प्रति लिखी (सम्भवतः उनके पुत्र तुलसीदास ने यह प्रति लिखा ही होगी।) छारखण्ड की प्रतियाँ में तुलसी की आरा का शब्द दखते हैं। दोस्त कोई

लक्ष्मिनदास हैं। संवत् १९४३ है। इससे जान पड़ता है कि कृष्णदास कम से कम दो-दोई वर्ष तुलसीदास के पास काशी में अवश्य रहे होंगे। कदाचित् कृष्णदास पिता की मृत्यु का समाचार लेकर सात्वना के लिए तुलसीदास के पास गये हों।

(२) नन्ददास की जन्म-भूमि रामपुर ग्राम थी जो खरखेत (शोरों) के पास है। नन्ददास ने इस ग्राम का नाम रामपुर से बदल कर श्यामपुर रख दिया। उन्होंने यहाँ 'श्यामसर' नाम का एक तालाब भी खुदवाया। नन्ददास ने यह नाम कब बदला होगा, इसका आभास बार्ता की कथा से मिलता है। अब कृष्णदास खरदास के पास से रामपुर लौटे होंगे, तब ही उन्होंने ऐसा किया होगा क्योंकि परले तो वे स्पष्टतया राममऊ में। उन्होंने अपने पुत्र का नाम भी कृष्णदास रखा है। इससे यह स्पष्ट है कि यह नाम भी शरणागति के बाद रखा होगा, यह भी अनुमान हो सकता है।

(३) नन्ददास माता-पिता के मरने के बाद दादी के पास छोटें योगमार्ग चले आए। वहाँ तुलसीदास के समय के रामानन्दी दुर्ग सविह से संस्कृत आदि का अध्ययन करते रहे। इसके बाद तुलसीदास की खादी होने पर वे माता के पास रामपुर चले गये वहाँ वे अपने भाई चन्द्रदास के साथ रहने लगे।

(४) कृष्णदास ने अपनी माता का नाम, *कमला* रखा है। स्पष्ट है नन्ददास ने विवाह *१९४३* में *१९४३* में *१९४३* का नाम था।

भ्रातृत्व उसमें भी प्रकाश्य है। तुलसीदास ने नन्ददास के हाथ पत्नी को संदेश भेजा, यह बात 'वार्ता' की घटनाओं के अनुकूल नहीं पड़ती, क्योंकि नन्ददास तो काशी में तुलसीदास के पास से चलकर सीवे विठ्ठलनाथजी के पास पहुँचे थे और वहाँ पुष्टिमार्ग में दीक्षा हो गये थे। परन्तु नवीन सामग्री (हरिराय की भावनावाली वार्ता १६६६) से यह स्पष्ट हो गया है कि विठ्ठलनाथजी के पास १-७ महीने या लगभग एक वर्ष रहकर नन्ददास सूरदास के आग्रह से रामपुर चले आए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने रत्नावली की काशी का वृत्तान्त सुनाया होगा और स्मृति के आधार पर तुलसीदास का संदेश कहा हो।

इस सारी सामग्री को प्रामाणिक सिद्ध नहीं किया गया है। वास्तव में इसकी अभी विस्तृत और अच्छी परीक्षा भी नहीं की गई है। जैसे विद्वानों के दो दल हैं, एक रामचरित विराटी, हरिचंकर शर्मा, दीनदयालु गुप्त, और काँकरोली से सम्बन्धित विद्वान् जो 'वार्ता' से मिलती-जुलती होने के कारण इस सामग्री को प्रामाणिक मानते हैं। दूसरी ओर के विद्वान् डा० माताप्रसाद गुप्त ने अपने ग्रन्थ 'तुलसीदास' में इस सामग्री की निम्नलिखित बहिरंग और अंतरंग परीक्षा उपस्थित की है (दे० तुलसीदास, पृ० ८०-६५)। बहिरंग परीक्षा में उन्होंने लगभग प्रत्येक सामग्री की प्रामाणिकता पर संदेह उपस्थित किया है। यह परीक्षा कहाँ तक निर्णायक है, यह केवल उनी सम्यक् निश्चय हो सकता है अब अन्य विद्वान् भी उसकी परीक्षा कर लें और प्राचीन लेखकों के विवेक कागज, रोशनी, लेखन-पद्धति आदि की विस्तृत परीक्षा द्वारा किसी एक निष्कर्ष पर पहुँच जायें। ऐसे निर्णय के अभाव में कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, अंतरंग की भी परीक्षा डा० माताप्रसाद गुप्त ने की है, यह अप्रत्यक्ष ज्ञान देने योग्य है। इन अंतरंग परीक्षा का आधार केवल एक पुस्तक (गोपी) पं० मालीधर अत्रेय की 'रत्नावली चरित' है जो सं० १८२६ की रचना है। इसमें तुलसीदास के जीवन सम्बन्धी तीन विषयों मिलती हैं—विवाह-विधि

(१६१०), विरागमन-तिथि (१६१६), और गृहत्याग-तिथि (१६२७)।
वे १६१२—१६२७ तक के १५ वर्षों के कवि-जीवन के सम्बन्ध में शका
उठाते हैं—

१. 'मैंने कवि की रचनाओं की तिथियाँ निर्धारित करने का जो
प्रयत्न किया है उसमें मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि उर्ध्वोक्त चन्द्रद्वय
वर्षों के भीतर कवि ने चार ग्रन्थों की रचना की होगी; 'रामललानदल्लू',
'जानकी मंगल', 'रामाशाप्रश्न' और 'वैराग्य सदीपनी' इन चार ग्रन्थों
में से केवल वैराग्य सदीपनी की प्रामाणिकता के विषय में कुछ संदेह
है। सोरो की किसी भी सामग्री में इन तीन में से किसी भी रचना का
उल्लेख नहीं होता है।

२—'मानस' ऐसी प्रशस्त और प्रौढ़ रचना के लिए उसकी भाषा
पर अधिकार प्राप्त करने और शैली में अम्परत होने में कुल चार ही
वर्ष—या कदाचित् उससे कम लगे होंगे, क्योंकि गृहत्याग की तिथि
सं० १६२७ कही गई है, और वह भी सोरोपच चालों के बधनानुसार—
इस पर सहसा विश्वास नहीं होता।

३—'रामाशाप्रश्न' (सं० १६२७) में कुछ ऐसे उल्लेख मिलते
हैं जो इस सामग्री की प्रामाणिकता पर अविश्वास प्रगट करते हैं।

(१) रामाशाप्रश्न की रचना काशी-निवासी गंगाराम ज्योतिषी
के लिए हुई—काशी में ही। इसकी भाषा भी अवधी है, अतः यह
अवधी प्रान्त या काशी में ही रचा गया होगा। पर काशी-निवास या
काशी-यात्रा तक का कोई उल्लेख सोरो सं० १६२७ तक की जीवन-
सामग्री में नहीं होता।

(२) चित्रकूट के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख रामाशाप्रश्न में आते
हैं। उनसे कवि के बार-बार चित्रकूट-सेवन का आग्रह स्पष्ट है, अतः
कवि इन दोहों की रचना के पूर्व कई बार चित्रकूट गया होगा।
गृह-त्याग के पूर्व किसी भी ऐसी यात्रा का उल्लेख सोरोनाली

में नहीं होता। इसके विपरीत सं० १६२२ से सं० १६२७ तक निरन्तर विषयान्तर रहता है।

(३) रामाशास्त्रन के अध्ययन से हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि उसकी रचना तिथि (सं० १६२१) के पूर्व ही उन्होंने अपने जीवन की भारा बहाल दी थी।

परन्तु इस सारी समीक्षा के बाद भी वह हम नवीन सामग्री की संशोधन शक्ति से प्रभावित हो गये हैं और उसके आधार पर कवि के प्रारम्भिक जीवन को अपनी पुस्तक में स्थान देते हैं यद्यपि अन्त में यह लिखना भी नहीं भूले हैं—

“हमें कितनी प्रसन्नता होती यदि इस सपना और रोचक कर को हम बिना किसी खटके के महाकवि के जीवन-वृत्त में स्थान सकते।”

डा० माताप्रसाद के सदेहों का कुछ निराकरण कॉकरोली डा० प्राप्त ‘अष्टाध्याय’ के अध्ययन से हो सकता है। उससे यह स्पष्ट है नन्ददास १६०७ में बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हुए जब वे गुरदास के पास गये, उन्होंने उनके लिए ‘साहित्य-सहरी’ की रचना की। इससे एक वर्ष पहले १६०६ में वे अवश्य काशी में थे जहाँ तुलसीदास भी थे। इससे स्पष्ट है कि तुलसीदास ‘रामाशास्त्रन’ की रचना (१६२१) से बहुत पहले ही काशी पहुँच गये थे और यदि यह सत्य है तो राम-चरितमानस की रचना (सं० १६३१) तक उन्होंने अवधि माया का अन्धका अध्ययन कर लिया होगा और उसमें छोटे-छोटे वे तीन-चार ग्रन्थ भी रच चुके होंगे जिन्हें डा० गुप्त तुलसीदास की कृति मानते हैं। तुलसीदास का जन्म सम्वत् १५८८ है (दे० तुलसीदास, पृ० ११०-१११)। इस प्रकार १६०६ के काशीवास के समय तुलसी की आयु १६ वर्ष की रही होगी। हो सकता है तुलसीदास काशी में पौराणिक वृत्ति करने गये हों। इसके अनन्तर सं० १६१२ में या पहले वे अपनी जन्म-भूमि लौट आए हों और बाद में कुछ लम्बे कालों के लिए

अयोध्या, काशी, विषकूट कथावृत्ति करते रहे हों। बीरे-बीरे वैराग्य-वृत्ति ब्रम्हने पर उन्होंने संवत् १६२१ में राम-हामन और वैराग्य-सदोपनी की रचना की होगी। 'वार्ता' के अध्ययन से पता चलता है कि ये १६२४ में ब्रज आए। तब तक उन्होंने रामचरितमानस की रचना अक्षर्य नहीं की थी, परन्तु प्रसिद्ध मर्यादावादी रामभक्त अक्षर्य थे। बाद को १६२७ में पानी के ध्यंग-वचनों से उन्हें एकाएक वैराग्य दृढ़ हो गया हो और ये काशी चले गये हों, जहाँ उन्होंने 'रामचरितमानस' (सं० १६-१) लिखा और रामभक्ति का प्रचार किया।

आधुनिक काल में नन्ददास के सम्बन्ध में विशेष खोज हुई है। परन्तु इस खोज को शुरू हुए अभी अधिक दिन नहीं हुए। शिवगिरि सरोव (शिवगिरि संगर, में नन्ददास का कोई वृत्तान्त नहीं दिया गया है। केवल छोटा-सा नोट है—“नन्ददास ब्राह्मण रामपुर-निवासी विठ्ठलनाथ के शिष्य। सं० १६८५ में उदय। इनकी मणना प्रवृत्तय में की गई है।”

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने उत्तर भक्तमाल छाप्य २० में नन्ददास के तुलसीदास के साथ आतुल्य का परली बार उल्लेख किया है—

तुलसीदास के अनुज सदा विठ्ठल-पथचारी
अतरंग हरि सदा, नित्य जेहि मिय गिरिधारी
भाषा में भागवत रची अति सरस मुहाई
सुख आगे द्विज कथन सुनत चल माहि दुबाई
पवाध्यायी हठि करि राखी, तब मुकुवर द्विज भवहरत
भी नन्ददास रस-गस-रत, प्रान तज्यो सुधि सो करत

इससे स्पष्ट है कि भारतेन्दु के जीवन-काल (१८५०-१८८५) में इस प्रकार की जन-भुक्ति पूर्व में भी थी कि तुलसीदास नन्ददास के भाई हैं।

(२) तुलसीदास और नन्ददास—श्री रामचन्द्र विद्यार्थी, 'विशाल भारत', अगस्त १९३६

(३) तुलसी-स्मृति श्रृंग (सनाढ्य जीवन) सितम्बर १९३६—
सम्पादक पं० गोविन्दवल्लभ भट्ट, पं० भद्रदत्त शर्मा, पं० प्रभुदयाल शर्मा।

(४) दोहा रत्नावली—सम्पादक पं० प्रभुदयाल शर्मा, दिसम्बर १९३६

(५) तुलसीदास और नन्ददास के जीवन पर नया प्रकाश,
पा० दीनदयालु गुप्त, हिन्दुस्तानी, १९३६

(६) नन्ददास—श्री रामप्रसाद बहुगुणा। नागरी प्रचारिणी
पत्रिका, मार्च १९३६ वि०।

(७) कुछ प्राचीन 'वस्तुएं'—पं० रामदत्त भारद्वाज, 'माधुरी',
१९४०। इसमें 'अमरगीत' की पुष्पिका आदि पहली बार आई है।

(८) वर्षवृत्त और वर्षलक्ष—पं० रामदत्त भारद्वाज, 'माधुरी',
अगस्त १९४०

(९) सरोरों से प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से सम्बन्ध
रखनेवाली सामग्री की बहिरंग परीक्षा—माताप्रसाद गुप्त, 'सम्मेलन
पत्रिका', अगस्त सितम्बर १९४०

(१०) महाकवि नन्ददास का जीवन-चरित्र—श्री दीनदयालु गुप्त
'हिन्दुस्तानी', जनवरी १९४१

(११) मुरलीधर चतुर्वेदी कृत रत्नावली चरित—पं० रामदत्त
भारद्वाज (नवीन भारत, तुलसी श्रृंग, मार्च १९४१)

(१२) दोहा रत्नावली (उपलब्ध प्रतियों का पाठांतर-संशोधित
सम्पादन)—पं० रामदत्त भारद्वाज (बही)

(१३) सन् १९१२ ई० में डा० धीरेन्द्र वर्मा, अस्पष्ट हिन्दी
विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय ने झाँसी से स० १९१० में प्रकाशित

८४ और २५२ वार्ताओं के आधार पर अष्टछाप कवियों की वार्ताओं का 'अष्टछाप' नाम से संकलन किया जो रामनारायणलाल, प्रयाग ने प्रकाशित किया।

(१४) सं० १९९६ में काँकरोली से "प्राचीन वार्ताग्रन्थ" प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। इसमें गो० हरिरायजी के 'भावप्रकाश' (सं० १६४७—सं० १६७२) की सूचना मिली। इस ग्रंथ में पुष्टिमागीय भक्तों के वृत्तान्त कुछ विशेष सूचना के साथ दिये गये हैं।

(१५) सं० १९९८ में द्वितीय भाग प्रकाशित हुआ। इसमें अष्टछाप के कवियों (अष्ट सत्ताओं) का ही वृत्तान्त है। इसके सम्पादक भी द्वारिकादास जी हैं। इसमें गो० हरिरायजी कृत भाव-प्रकाश के साथ-साथ अष्टछाप की वार्ता है जिसका आधार सं० १७५९ की 'अष्ट सत्तान की वार्ता' ग्रंथ है। 'अष्टसत्ता तथा' '८४ वार्ता' की सं० १६९७ की प्रतिलिपि काँकरोली में विद्यमान है परन्तु उसे प्रकाश में नहीं लाया गया है। इस द्वितीय भाग की गुजराती प्रस्ताव—भी कण्ठमणि शास्त्री ने बड़ी विद्वत्ता-पूर्वक लिखी है। इससे नन्ददास और छरदास के सम्बन्ध और नन्ददास के मौलिक चरित्र पर प्रकाश पड़ता है।

इस आधुनिक खोज-सामग्री और नन्ददास पर आलोचना आदि के प्रकाशन के इतिहास से यह स्पष्ट हो जायगा कि नवीन सामग्री की उसके आधार पर लिखे हुए निबन्ध १९३८ ई० से हमारे सामने आते हैं। इस तरह नन्ददास की नवीन खोजें अति आधुनिक हैं और उन पर विद्वानों ने निर्णयात्मक सम्मति नहीं दी है। खोज-सामग्री तीन केन्द्रों में मिली है—

(१) सोरो, जिज्ञा पट्टा, और जिज्ञा अलीगढ़ (२) काँकरोली, विद्या विभाग (३) बब, मथुरा।

परन्तु काँकरोली और ब्रज-मथुरा की सारी उल्लेख्यों में प्राप्त सामग्री अभी प्रकाशित होकर हमारे सामने नहीं आई है। सम्भव है विशेष खोज से काँकरोली और ब्रज-मथुरा केन्द्रों में और भी सामग्री प्राप्त हो और कवि के जीवन-वृत्त के निर्णय में सहायक हो। काँकरोली से प्रकाशित वार्ता-रहस्य द्वितीय भाग में संस्कृत की वार्ता का भी उल्लेख है जिसका कुछ भाग पहले भाग के साथ प्रकाशित भी हुआ है, परन्तु बताया यह गया है कि इसमें सारे अष्टछाप कवियों की वार्ताएँ प्राप्त नहीं हो सकी हैं, शायद नष्ट हो गई हैं, अतः उन्हें नहीं दिया जाता। परन्तु पता नहीं जो प्राप्त है सम्पादन में उनसे किसी प्रकार का सहारा लिया गया है, या नहीं। यह आशा प्रकट की गई है कि शायद इस संस्कृत वार्ता की और कोई प्रति प्राप्त हो जाय। प्राप्त सारी सामग्री को एक सूत्र में बाँधना कोई कठिन काम नहीं है, यदि

(१) हम नाभा-वेनीना-वदास के उल्लेखों को गलत सिद्ध कर अयोग्य मान लें।

(२) यदि हम नाभादास के तुलसीदास-नन्ददास का सम्बन्ध न लिखने की कुछ समझ में आनेवाली व्याख्या कर सकें। हमने अन्यत्र देखा है कि मूल गुणार्थ चरित्र की प्रामाणिकता कई विद्वानों ने अस्िद्ध कर दी है, अतः इस सामग्री का एक प्रकार निराकरण हो ही जाता है। रही नाभादास की सामग्री—हम बता चुके हैं, कि यह सामग्री और इसकी टीकाएँ नन्ददास के जीवन-वृत्त के लिए एक भेणी में आती हैं, वार्ता आदि की अन्य सामग्री दूसरी भेणी में। हो सकता है, नाभादास ने यह समझा हो कि नन्ददास से तुलसीदास का सम्बन्ध दिखाने और फिर उन्हें कृष्ण-भक्त बहने से तुलसीदास की महत्ता में कमी आ जायगी कि इनके भाई कृष्ण-भक्त हुए। या चन्द्रदास भी भक्त हों, और नाभादास से परिचित हों, और इस परिचय के आधार से नाभादास ने उनका नाम लेना अच्छा समझा हो। नीचे हम शेष समस्त सामग्री के आधार पर नन्ददास के जीवन-वृत्त का निर्माण करेंगे, परन्तु

जन्म-तिथि—ऊपर हमने नन्ददास के जीवन के सम्बन्ध में विशद विचार किया है। अब हमें यह देखना है कि इस नन्ददास के जन्म, मृत्यु आदि के सम्बन्ध में किन निश्चित सिद्धान्तों पर पहुँच सकते हैं। श्री दीनदयालु गुप्त एम० ए०, एल-एल० बी० ने अनुमान से सं० १५६४ में नन्ददास की जन्म-तिथि मानी है। श्री द्वारकादास (कॉकरोली) का अनुमान है कि यह जन्म संवत् १५६० है। नन्ददास के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में अभी हमें एक ही निश्चित तिथि प्राप्त हुई है। यह तिथि १६०७ में साहित्य-लहरी (सुरदास) की रचना-तिथि है। 'नन्दनन्दनदास हित साहित्य लहरी कीन'। इस तिथि से कुछ पहले ही नन्ददास ने गुसाईंजीसे दीक्षा ली होगी। उस समय वे बचस्क अवस्था होंगे। ओ हो, जन्म-तिथि का केवल अनुमान ही हो सकता है। श्री द्वारकादास की तिथि के हिसाब से चत्राणी से प्रेम करने के समय वे १६ वर्ष के युवा होंगे, परन्तु श्री गुप्तजी के हिसाब से उनकी अवस्था उस समय २३-२४ वर्ष की होगी। रसिकता का विशेष विचार १६ वर्ष की आयु के बाद ही होता है—यदि वे काफ़ी पक्का नहीं होते, तो झुझी को सम्भीतापूर्वक उन पर विचार न करना होता। तब तक उन्होंने रामोपासना की थी और कदाचित् राम-भक्ति-पूर्ण कुछ पद भी रचे थे। 'वार्ता' में स्पष्ट है कि वे उस समय कविता भी करते थे, गाते भी सुन्दर थे। अतः इस सब के लिए हमें यह निश्चित रूप से मानना होता है कि वे जीवन की सीढ़ी पर काफ़ी दूर तक चढ़ गये थे।

जाति—सं० १६६० की "गुसाईंजी के चार सेवक की वार्ता" से पता चलता है कि वे सनातन ब्राह्मण थे। इसमें संदेह करने का कोई कारण नहीं है। कृष्णदास के ग्रंथों और अन्य उल्लेखों से भी इस निर्णय की सत्यता सिद्ध होती है।

शरणागति समय—श्री दीनदयालु गुप्त के अनुसार नन्ददास का शरणागति समय सं० १६१८ है और द्वारकादास कॉकरोली

सं० का प्रयोग इन सब संगों में विशेष अर्थ हुआ है। इन सब संगों का विवाह है और विवाह नमन के मंगनगान के लिए ही इनकी रचना हुई है। इस प्रकार नन्ददास के इन प्रौढ़तम संगों के रचनाकाल के हिसाब में, हम दो भागों में बाँट सकते हैं।

१—१६०४ में १६३० या कुछ बाद तक लिखे ग्रंथ—इवान मगाई, भैरवगीत, रागपंचांग्यायी, मिद्वान्त पंचांग्यायी।

२—१६३० या कुछ बाद शुरू होकर जीवन के अन्त के लिखे ग्रंथ—रामचरित, विहमंजरी, दशमस्कन्ध, कविमणी माला।

मृत्यु—जीवन-तिथि की भाँति कवि की मृत्यु-तिथि भी अनुमानित ही है। वार्ता से पता लगता है कि नन्ददास की मृत्यु अकबर और बीरबल के समकाल हुई। बीरबल की मृत्यु सं० १६४८ में हुई। अतः नन्ददास की मृत्यु सं० १६४७ से पहले हुई होगी। वार्ता से यह भी पता लगता है कि उनकी मृत्यु के समय गुजराई और विठ्ठलनाथ जीवित थे। गोस्वामीजी का गोलोइवास सं० १६४२ में हुआ। अतः नन्ददास की मृत्यु सं० १६४२ से ही पहले घटित हुई होगी। बा० दीनदयालु गुप्त ने अनुमान किया है कि कदाचित् मृत्यु-तिथि १६४० है। कदाचित् इसी समय अकबर बीरबल के साथ नर में आया था।

मृत्युस्थान—वार्ता के अनुसार उनकी मृत्यु मानसरीगंगा पर ही हुई। वार्ता उनका स्थायी निवास था।

रचनाएँ

जनशायर में नन्ददास की दो रचनाएँ ही प्रसिद्ध हैं—भैरवगीत और रासचंदाव्यायी, परन्तु प्राचीन लेखकों के उल्लेखों और आधुनिक खोजों के फलस्वरूप हमें अब तक उनके ३० ग्रन्थों का पता लग सका है—१ पंचाव्यायी, २ नाममंजरी, ३ अनेकार्थ मंजरी, ४ कविमण्डौ मंगल, ५ भैरवगीत, ६ मुदामाचरित्र, ७ विरहमंजरी, ८ प्रबोधचन्द्रोदय भाटक, ९ गोवर्द्धनलीला, १० दशमस्कन्ध, ११ रासमंजरी, १२ रसमंजरी १३ रूपमंजरी, १४ मानमंजरी, १५^१ दानलीला, १६ मानलीला, १७ दिलोपदेश^२, १८ शानमंजरी, १९ नाम-चिन्तामणि-माला, २० नासिरत पुराण, २१ श्याम सगई, २२ विज्ञानार्थ प्रकाशिका^३ २३ सिद्धान्त पंचाव्यायी^४, २४ बांगलीला, २५ फूलमंजरी, २६ रानी मंगौ, २७ कृष्ण-मंगल, २८ रासलीला^५, २९ बाँसुरी लीला^६, ३० अर्थचन्द्रोदय^७ ।

१ हिन्दुस्तानी भाग २, द्वितीय संस्करण, पृ० ४४५ (काशी)

२ माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दोस्तान (१८८६ प्रिडर्सन)

३ मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय संस्करण १९२६)

४ हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल १९४०)

५ नागरी-प्रचारणी-सभा की खोज रिपोर्ट

६ श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कोंकरोली

७ 'नन्ददास' भूमिका पृ० २०—ये दो छोटी प्रकाशित पुस्तकें हैं जिनकी प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हुई हैं और परीक्षा नहीं हो सकी है ।

शब्द का प्रयोग इन सब ग्रंथों में विशेष अर्थ हुआ है। इन सबका विषय विवाह है और विवाह समय के मंगलगान के लिए ही रचना हुई है। इस प्रकार नन्ददास के इन प्रौढ़तम ग्रंथों के रचना के दिमाग से, हम दो मागों में बाँट सकते हैं।

१—१६२४ से १६३१ या कुछ बाद तक लिखे ग्रंथ—रघुपति सगाई, भँवरगीत, राखपंचाध्यायी, सिद्धान्त-पंचाध्यायी।

२—१६३१ या कुछ बाद शुरू होकर जीवन के अन्त के लिए ग्रंथ—रूपमंजरी, विरहमंजरी, दशमस्कंध, रुक्मिणी मंगल।

मृत्यु—जीवन-तिथि की भाँति कवि की मृत्यु-तिथि भी अनुमान ही है। बातों से पता लगता है कि नन्ददास की मृत्यु अकबर और बीरबल के समकाल हुई। बीरबल की मृत्यु सं० १६४८ में हुई। अतः नन्ददास की मृत्यु सं० १६४७ से पहले हुई होगी। बातों से यह भी पता लगता है कि उनकी मृत्यु के समय गुमाई की विद्रोहनाय बीरत थे। गोस्वामीजी का गोलोडवाघ सं० १६४२ में हुआ। अतः नन्ददास की मृत्यु सं० १६४२ से ही पहले घटित हुई होगी। बा० शीतदयाशु गुप्त ने अनुमान किया है कि कदाचित् मृत्यु-तिथि १६४० है। कदाचित् इसी समय अकबर बीरबल के साथ ब्रज में आया था।

मृत्युस्थान—बातों के अनुसार उनकी मृत्यु मानसरीगंगा पर ही हुई जहाँ उनका स्थायी निवास था।

रचनाएँ

जनसाधारण में नन्ददास की दो रचनाएँ ही प्रसिद्ध हैं—मैवग्गीत और रासरांचाध्यायी, परन्तु प्राचीन लेखकों के उल्लेखों और आधुनिक खोजों के फलस्वरूप हमें अब तक उनके ३० ग्रन्थों का पता लग सका है—१ पंचाध्यायी, २ नाममंजरी, ३ अनेकार्थ मंजरी, ४ रुक्मिणी मंगल, ५ मैवग्गीत, ६ सुदामाचरित्र, ७ विरहमंजरी, ८ प्रबोधचन्द्रोदय भाटक, ९ गोवर्द्धनलीला, १० दशमस्कन्ध, ११ रासमंजरी, १२ रसमंजरी १३ रूपमंजरी, १४ मानमंजरी, १५ दानलीला, १६ मानलीला, १७ हितोपदेश^१, १८ ज्ञानमंजरी, १९ नाम-चिन्तामणि-माला, २० नासिरत पुराण, २१ श्याम सगार्द, २२ विज्ञानार्थ प्रकाशिका^२ २३ सिद्धान्त पंचाध्यायी^३, २४ जोगलीला, २५ फूलमंजरी, २६ रानी मंगी, २७ कृष्ण-मंगल, २८ रासलीला^४, २९ बाँसुरी लीला^५, ३० अर्धचन्द्रोदय^६ ।

१ हिन्दुस्तानी भाग २, द्वितीय संस्करण, पृ० ४४५ (काशी)

२ माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दोस्तान (१८८६ प्रिन्सटन)

३ मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय संस्करण १९२६)

४ हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल १९४०)

५ नासरी-प्रचारणी-सभा की खोज रिपोर्ट

६ श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरोली

७ 'नन्ददास' भूमिका पृ० २०—ये ही छोटी प्रकाशित पुस्तकें हैं जिनकी प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हुई हैं और परीक्षा नहीं हो सकी है ।

इन ग्रंथों में से ७ ग्रंथ अप्राप्य हैं—प्रबोधचन्द्रोदय, मञ्जरी, मानलीला, मानमञ्जरी, विज्ञानार्थ प्रकाशिका, और अर्थचन्द्रोदय। अतः साधनी के अभाव में इनके किसी निर्याय पर नहीं पहुँच सकते। “नन्ददास” के अनुसार नाममञ्जरी, मानमञ्जरी और नाम-चिन्तामणि-मैं एक ही ग्रंथ के तीन नाम हैं।^१ दानलीला, हितोपदेश लीला को उन्होंने किसी अन्य अप्रसिद्ध नन्ददास की कृति और जोगलीला का उदयनाथ कवीन्द्र की रचना प्रमाणित कि कूलनन्दरी, रानी भंगौ और कृष्णमगल बहुत ही छोटी रचन अंतिम रचना तो एक ही पद है। इनके सबन्ध में सम्पादक अति है। शेष रचनाओं में से भी सुशमाचरित और नाथिकेत पुर सम्बन्ध में उन्हें सदेह है।^२ इस प्रकार प्रामाणिक रचनाएँ रह जाते हैं—वचमञ्जरी (रूपमञ्जरी, इयाम सगाई, गिरहमः रसमञ्जरी, मानमञ्जरी, अनेकार्थ मञ्जरी), भँवरगोत्र, रासचंचाव्या मिद्वान्त पचासवी, दशमस्कंध।

इन्हीं ग्रंथों का सम्पादित संस्करण हमें प्राप्त है, जिसे हमने अपने इस अध्यायन का आधार बनाया है।
इस सविनय प्रथ निगूण व बाद हम नन्ददास की रचनाओं का विस्तृत परिचय देंगे।

१ - वचमञ्जरी

नन्ददास के पाँच ‘मञ्जरी’ ग्रंथों को हम एक साथ ‘वचमञ्जरी’ शीर्षक के नीचे रख सकत हैं। ये ग्रंथ हैं—रूपमञ्जरी, गिरहमञ्जरी, १ ‘नन्ददास’ पृ० २० भूमिका
२ वहा
३ वहा पृ० १६
४ वहा पृ० ४.
५ वहा

रसमञ्जरी, मानमञ्जरी और अनेकार्थमञ्जरी । 'मञ्जरी' शब्द नन्ददास को विशेष प्रिय लगता है । जीवनवृत्त लिखते समय हमने उनकी एक रक्तिक मित्र 'रूपमञ्जरी' के सम्बन्ध में लिखा है । कदाचित् इसी वैष्णव महिला के आग्रह से और उससे प्रभावित हो नन्ददास ने अपनी अधिकांश रचनाएँ की हैं । अतः ग्रन्थों का नाम देते हुए उन्होंने इन्हें उस 'अति विचित्र' 'रक्तिकमित्र' से सम्बन्धित कर दिया है ।

इन 'मञ्जरी'-ग्रन्थों में सबसे महत्त्वपूर्ण 'रूपमञ्जरी' ही है यद्यपि रसमञ्जरी और विरहमञ्जरी भी हमें उनके साम्प्रदायिक सिद्धान्तों को समझने में सहायक होते हैं । रूपमञ्जरी में साहित्यिकता की माना विशेष है । अनेकार्थमञ्जरी और नाममञ्जरी कोष ग्रन्थ हैं । साहित्य और धर्म किसी की भी दृष्टि से उनका विशेष महत्त्व नहीं है ।

रूपमञ्जरी में एक बड़ी भूमिका के बाद कवि अपनी कथा आरम्भ करता है ! इस भूमिका का उपयोग हमने अन्वय किया है । यहाँ हम 'रूपमञ्जरी' की कथा-मात्र से पाठकों को परिचित करेंगे । धर्मवीर नाम का एक राजा था । 'रूपमञ्जरी' नाम की उसकी एक सुन्दर कन्या थी । जब वह ब्याहने योग्य हुई तो माता-पिता को चिन्ता हुई और उन्होंने एक विप्र को बुलाकर, प्राचीन प्रथा के अनुसार घर दूँदने का काम उसे सौंपा । जब विप्र महाशय चलने लगे तो स्पष्ट रूप से कह दिया—

अहो विप्र ! धन लोभ न कीजै
या लाइक नाइक की दीजे

(२२)

परन्तु लोभी विप्र ने एक 'कूर, कूर्य' कुँवर के घर टीका दे दिया । जब लौटने पर पिता-माता और सम्बन्धियों को यह बात मालूम हुई तो उन्हें बड़ा चोभ हुआ—परन्तु विशाह सम्पन्न हो गया । रूपमञ्जरी की एक सती हनुमती थी । उसने यह सोचा कि यह रूप, यह

मौ-नरं, वह जीवन बेकार क्यों प्राय । उसने उसे 'उम
कमाना चाहा, क्योंकि—

रस में जो उमरति-रस आदी
रस भी अवधि कहत कवि गाही

उसे 'गिरिधर बंधा' का ध्यान हुआ, सोचा—

इक मुनियन सब लाइक नारक
गिरिधर कँवर सदा मुखशइक
हो निय तिनहि कौन बिधि पाऊँ
कौ या कुंवहिहि ध्यान मिलाऊँ

(१७४-१७५)

एक दिन राजकुमारी अपनी सखी इन्दुमती के साथ
चित्रकारी में सो रही थी । वहाँ सपने में उसने एक अदभुत
नायक को देखा । जागने पर जब सखी ने उसकी संभ्रमावस्था
देखकर उससे कारण पूछा—

पूछति प्यार भरी सखि क्याता, कहि बलि आब कहा इह बात
लोयन लौने, ललित ललौने, बलिबलि हँसत है दानन कौने
देखति हों बलि नहि तुव बसके, जब कहूँ प्रीतम रस के बसके
को अरु मुकूती बगल में, जो निरख्यौ इन नैन
मो दिय जगत बुझाह बलि, सोचि अमी रस बैन

कर दिया और उसे सुँघती हुई वह उसके साथ आगे बढ़ने लगी। तू (इन्दुमती) आगे निकल गई। परन्तु अकेली पाकर भी रूपमंजरी को भय नहीं मालूम हुआ, वस्तुएँ परिचित-सी जान पड़ीं। इतने में—

इत लैं इक कोउ नव कितोर सौ
मनमथ हू के मन की चोर सौ
मुसकत-मुसकत मो दिग आयौ
नैनन में बहुत चौध सौ लायौ
मोहिं हँसि वृभन लाग्यौ तहाँ
इन्दुमती तेरी सहचरि कहाँ

(२२३-२२५)

रूपमंजरी ने कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु उस नायक ने एक फूल तोड़कर उसके गाल पर खेंच मारा। इसके आगे उसे मुच-बुध नहीं रही। इन्दुमती ने उससे नायक के लक्षण जानना चाहे जिससे वह अपनी प्यारी सहेली का संदेश उस तक ले जाये और उसे लाये। रूपमंजरी ने कहा कि यह भी क्या सम्भव है कि स्वप्न का नायक सशरीर आगतावस्था में प्राप्त हो जाये। इन्दुमती उपा-अनिरुद्ध का उदाहरण देकर आश्वासन देती है—

इक हुनी ऊपा मेरी अलो
सपने काम कुँवरि सौ मिली
ऐसे लब्धन को लखि पाई
सौ सखि सौ सब बात जनार्द
विपरेखा
मेला
लै आई
न मिली

(२४१-२४४)

अन्त में रूपमन्वरी नायक का रूप वर्णन करती है। ये नायक और कोई नहीं है, स्वयं कवि (मन्दरास) के आराध्य भगवान् श्यामन्दर (श्रीकृष्ण) हैं—

रूपम धरन तन अरु रस भीनौ, मरकत रस निचोड़ अरु कीनौ
मोरचंद सिर अरु कलु लौनौ, मानौ अली टटाबक टौनौ
सोहत अरु कहूँ बोंका भौही, मो मन जानै, कै पुनि हो ही
चुनि-चुनि सरद कमलदल लीजे, तिन को मोती पानिप दीये
ता मोहन के नैनन आगे, अलि ! तेऊ अति जीके लागे
नासिक मोती बगमग धोती, कहत जु मो मति होती छोती
पीत बसन दुति परत न कही, दामिनी सो बहुत पिर है रही
साल के साल कलुनि लुधि ऐसी, लाल निचोड़ रंगो होइ बैसी
मुरली हाथ मुहाई माई, बिनहि बजाये राग पुचाई
ताके रूप अनूप रस, बीरी ही मेरी अलि
आज तनक मुधि परन दे, छये कहौगी कालि

(१५९-१६५)

यह सुनकर इन्दुमती मूर्धित हो जाती है। जब यह मूर्च्छा से आगता है तो रूपमन्वरी उसने कारण पूछता है—

गुन की पानन क्यों मुरझानी

(१६६)

इन्दुमती कहती है कि उसने यह सोचकर कि उगका रूप अर्थात् आ रहा है एक देवता का मनाया था, उसी ने नायक रूप में लगने में दर्शन दिये हैं। रूपमन्वरी के उस नायक का अलापता मुखने पर इन्दुमती कहती है—

गङ्गुष गर्ज, जाई बनिहारो
अममगह लुधि जग ते ग्यारी
नई को मोय मन्द बहु राखा
बस सरबस एकहि आखा

जमुमति रानी सब जग जानी
भाग-भरी, सुर-नरन बलानी
रमा, उमा-ही दासी बाकी
ठकुराहत, पा कहियै ताकी
तिनको सुत सो कँवर कन्हारै
ताकी छवि तू दिखि ही आई

(२८५ २६०)

घीरे-घीरे रूपमंजरी का प्रेमभाव बढ़ने लगा । इन्दुमती उसी में
अपने प्रभु (गिरिधर) को पूजने लगी क्योंकि—

रूपमंजरी तिय को हियौ
गिरिधर अपनी आलय कियौ

(२६५)

इसके बाद कवि रूपमंजरी के प्रेमभाव के क्रमिक विकास का
उपस्थित करता है और उसे क्रमशः हाव, भाव, रीति की
अवस्थाओं के भीतर से ले जाता हुआ इस परम प्रेमावस्था में परिणत
करता है—

भूल विद्या सब मिट गई, लाई बहू गुरुन की लई
मन की गति पिय पै हक दारा, समुद मिली जैसे गंग की धारा
अमकि दै नैन नीर भरि आवै, पुनि मुखि जाइ, महा छवि पावै
पुलकि अग मुरमंग जनावै, बीच-बीच मुरभाई पावै
बिचरन तन अस देह दिखाई, रूपबेलि जैसे घाँम में आई
तनक बात बौ पिय पै पावै, सौ बिरियां मुनि तृपति न आवै

इस परमरति के फलस्वरूप—

रूपमंजरी तिय हियदि, पिय भलकै इमि आई
चंद्रकात मति मोहि जिमि, परम चंद्र की भाई

(२१६)

सुबह रूपमंजरी जागती है तो उसके अलसाये अंगों और रति-
भिहों को देखकर सखी इन्दुमती जान लेती है कि इसे इष्ट घर की
प्राप्ति हो गई। परन्तु कवि ने स्वप्न की प्राप्ति और जाग्रति के अनुभव
में कोई भेद नहीं रखा है। सखी देखती है कि रूपमंजरी के गले में
जो माला है, वह उसकी नहीं है—

फूल माल जो गिय पै पाई
कुँवरि के कंठ चली सो आई

(५६६)

जब हम 'रूपमंजरी' की इस कथावस्तु को ध्यान से पढ़ते हैं, तो
हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि कथा के पीछे कवि के धार्मिक सिद्धान्त
लिये हुए हैं, इन्हीं सिद्धान्त रत्नों को प्रकाशित करने के लिए उसने
कथा को अपनाया है। स्वयं रूपमंजरी की कथा कथा-दृष्टि से विशेष
महत्त्वपूर्ण नहीं है। यही कारण है कि कथा में पात्रों का कोई विकास
नहीं हो पाया है। रूपमंजरी और इन्दुमती दोनों व्यायचित्र मात्र रह
जाती हैं। कवि के ये सिद्धान्त क्या हैं, यह प्रश्न हो सकता है।

इस ग्रन्थ में वह एक प्रेमपद्धति का वर्णन कर रहा है। इस प्रेम-
पद्धति को उसने 'प्रभु की प्राप्ति' का एक मार्ग माना है—

पेयै कौ प्रभु के पकज-पग
कबिन अनेक प्रकार कहे मग
तिन में रह रह सृज्जम रहे
हौ तिहि बलि जो इहि चलि चहे

(१७, १८)

रूपमंजरी की कथा को इस प्रेमपद्धति के प्रकाशन का साधन-मात्र
बनाया गया है। रूपमंजरी के बचस्क होने पर माता-पिता की चिन्ता
और ब्राह्मण के लोभ के कारण क्रूर और क्रूरपति को उसका ब्याह
जाना—लौकिक कथा इतनी ही है। इस कथा को अगे इन्दुमती के
सहारे बढ़ाया गया है। बल्लभाचार्य के सम्प्रदाय में सबसे प्रचलन

सिद्धान्त यह है कि भगवान का भेष्यतम भौतिक प्रेम, माय, ऐश्वर्य सब भगवान को हास्यमय होकर भाग्यक होता है। कृष्णदास आचर्यजी की कथा में इस पङ्क्ति है कि उन्होंने आगे से एक अरपन्त मुन्दी लड़का को देखा, उसकी कला पर मुग्ध हो वे उसे भगवान को आरोग्य के लिए गोवर्द्धन से आये। शौन्दर्य अब भगवान पर ही न चढ़ा, तो उसकी शायंकता क्या ? (देखिये २५२ वैष्णवों की वार्ता)। यही भाव सिद्धान्त रूप से रूपमञ्जरी की कथा में गूँथ दिया गया है। इन्दुमती गोचनी है कि यह रूप सफल कैसे हो (१६५) ? इसके लिए वह उपपत्ति-रस को आयोजन करती है। टास्म यह है कि भक्त को भगवान के प्रति ऐसा शीघ्र प्रेम होना चाहिए जो प्रेमिका को उपपत्ति के प्रति होता है। यही परकीया भाव की उपासना है। रूपमञ्जरी के लिए कृष्ण उपपत्ति ही हैं। परन्तु इस रस की प्राप्ति के लिए साधक या गुरु दोनों में से किसी को उद्योग तो करना ही पड़ेगा—

आखौ संसु समाधि लगावे, जोगी जन मन हू नहि आवै
निगमहि निपट अगम जो आही, अबल किहि बल पावे ताही
(१७६, १७७)

गुरु उद्योग करता है। इन्दुमती गुरु है। वह रूपमञ्जरी * गिरिधरप्रिय के सम्बन्ध में बताती है और गोवर्द्धन जाकर उस प्रतिमा दिखा लाती है। गुरु पहले प्रतिमा ही बतलाता है क्यों शालान्वाय से ही चन्द्रमा सहज हो दिखलाई पड़ जाता है। या प्रतिमा, तब सद्धम। परन्तु प्रतिमा दिखाने भर से प्रियतम के दम नहीं हो पाते। उसके लिए गुरु को प्रार्थना करनी होती है, हाथ प कर शिष्य को सीढ़ी-सीढ़ी आगे बढ़ाना होता है। प्रगट तो वह होता है अपने अनुग्रह के साथ। यही "पुष्टि" सिद्धान्त है। भग की पुष्टि, उनकी अनुकंपा ही, भक्तों का पोषण करती है। इस नायक पहले आप ही रूपमञ्जरी को दर्शन देते हैं। इस "पुष्टि"

के बाद भक्त का भगवान के प्रति विशेष आग्रह होता है, उनके प्रति उसकी जिज्ञासा बढ़ती चलती है। गुरुपद-पद पर उसकी जिज्ञासा को उकसाता है और उसे भगवान के सत्य स्वरूप और प्रेममय व्यक्तित्व से परिचित कराता है। वह स्वयं उसका सहचर है। भक्त को मार्ग पर लगाना ही उसके जीवन का ध्येय है, आनन्द है—

प्रेम बढ़ावहिं छिनहि छिन, भूमि-भूमि उनहारि
क्यौ मधि काढ़ी अग्निकन, क्रम-क्रम देत पजारि
(२४६)

भगवान की अनुपम रसमयी मूर्ति से जब भक्त का हृदय परिचित हो जाता है, तब वह धन्य हो जाता है। परिस्थिति यह है कि

अनेक बन्म जोगी तप करे
मरिपचि चपल चित्त कौ धरे
सो चित्त ले उहि ओर चलावे
तौ वह नाथ हाथ नहि आये
धरं गोपिन कौ सौ हित होई
तब कहूँ जाह पाइयै सोई

परन्तु भगवान की पुष्टि जब होती है तो, रूपमञ्जरी को जिस तरह, भक्त को यह निधि आप प्राप्त हो जाती है। धीरे-धीरे यह प्रेम-भाव गाढ़, गाढ़तर, गाढ़तम हो जाता है। रसशास्त्र की परिभाषा में भाव, हाव, हेला, रति, यह क्रम है। यहाँ रस का आशय अलौकिक है, अतः ये प्रवृत्तियाँ भी अलौकिक हैं, इनमें 'साधारणता' छूटना ठीक नहीं है। रति-अवस्था पर पहुँच कर तीव्र विरहासक्ति की अनुभूति होती है। अंत में जब यह विरहासक्ति भी अंतिम दशा तन्मयासक्ति को पहुँच जाती है, तब भक्त को भगवान प्राप्त होते हैं—परन्तु वह भी भाव में। बल्लभ-सम्प्रदाय में भाव ही प्रधान है—भक्त भगवान को जाकर प्राप्त नहीं करता, वे उस भाव में ही मिलते हैं। इस भावमिलन

कृष्ण-शाय्य में भूमिका में सब रसों को (जिसमें शृङ्गार रस भी है) मगधानोन्मुख कहकर नन्ददास ने नायिका भेद और नायक भेद करा है—

रूप प्रेम आनन्दरस, जो बहुत जग में छादि
 सो सब गिरिधर देख कौ, निषारक बरनौ तादि

कृष्ण-शाय्य में शृङ्गार की इतनी सुन्दर खोजारोनि, इतनी तेजस्विता के साथ, कही नहीं है। रूपमञ्जरी में शृङ्गार-शास्त्र का विस्तृत प्रयोग हुआ है, जैसे नायक-रूपवर्णन, नायिका-रूपवर्णन, वय-संदि, वीरनागम, पटशत्रु-वर्णन, मुख नखोदा का वर्णन, अज्ञात वीरना, हाव, भाव, हेला, प्रौढ़ा आदि। नन्ददास और उसके पहले विद्यापति के काव्य में रसशास्त्र का विछेद और बहुत सुन्दर प्रयोग हुआ है। नन्ददास ने इस प्रयोग को आगे ही नहीं बढ़ाया, इसका एक शास्त्र खड़ा कर दिया है। रूपमञ्जरी में रसमञ्जरी की कुछ चौपाइयाँ और कुछ दोहे स्थान-स्थान पर मिलते हैं। जान पड़ता है कि कवि ने एक ही छामरी को दो स्थानों पर उपयोग करने का विचार पहले ही कर लिया था और शायद दोनों रचनाएँ भी एक समय की हैं। हो सकता है कि रसमञ्जरी की रचना पहले हुई हो और रूपमञ्जरी लिखते समय उमस में जैसे-जैसे स्पष्ट आते गये, वैसे-वैसे दोहे-चौपाइयाँ रसमञ्जरी से ले लिये गये।

रसमञ्जरी पर लिखते हुए “नन्ददास” के सम्पादक उमाशंकर शुक्ल कहते हैं—“रसमञ्जरी माया-साहित्य में कदाचित् नायिका भेद का पहला ग्रंथ है। स्वयं कवि ने ‘रसमञ्जरी’ नामक किसी ग्रंथ के अनुसरण करने का उल्लेख किया है। संस्कृत कवि मानुदत्त मिश्र विरचित ‘रसमञ्जरी’ से नन्ददास की ‘रसमञ्जरी’ की तुलना करने पर दोनों में बहुत अधिक साम्य मिलता है और यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि का अभिप्राय मानुदत्त के ग्रंथ का अनुसरण करने से ही है।

मानुष्य ने विभिन्न नायिकाओं के लक्षण गुण में दिये हैं और उन्हें उदाहरण स्वरूपों में। लक्षणों की समीचीनता पर भी उन्होंने शर्णादय से विशेषन किया है। नन्ददास ने इन विभागों को एकदम हँस दिया है। उन्होंने प्रायः उदाहरणों को ही लिया है।” (भूमि, ५६३) वास्तव में नायिकाभेद पर संस्कृत में बहुत पदों से चिन्ता आ रहा था और बहुत कुछ लिखा जा चुका था। सम्भव है कि लोग करने में ‘रमणीय’ (नन्ददास) से पहले का भी कोई भाषा नायिकाभेद उपलब्ध हो जाय। नन्ददास के कुछ पदों में स्पष्टतः नायिकाओं का नाम आया है। सम्भव है, उन्होंने भी नायिकाभेद लिखने का प्रयत्न किया है। परन्तु यह तो स्पष्ट है कि विद्यावति और जयदेव के समय में ही रमयाय्य भक्तिशाय्य को प्रीतिता दे रहा था और इन कवियों की रचनाओं में ‘नायिकाभेद’ मिला जाता है। नन्ददास की मरणावधि है कि उन्होंने स्पष्ट रूप में ‘रम’ का अध्ययन भक्ति को दृष्टि से भी अनिवार्य है’, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। प्रष्टा कहती है—रमो मे वाः (यह रम है)। नवलमाधारी ने एक बार फिर भगवान के रम्य, आनन्दतम का महत्त्व घोषित किया। उन्होंने गीतियों की मुख्यकर्म की आध्यात्मिक एवं भौतिक व्याख्या की और श्रेयस्मान और देवभाव (अलौकिक मधुररति) को एक ऐसी बनाने हुए भी इस प्रकार का भेद मतभावा जिस प्रकार का भेद प्रामाणिक और जयसिंह से होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि नवलमाधारी मानकी पूजा और वास्तव्य भाव से सेवा के उपयोग से, परन्तु उनके अनुभाव प्रथ में जो सम्पन्नाध्यायी और गोपीनरत्न की व्याख्या हुई भी, बार को विद्वज्जनाय और अष्टादश के कवियों ने उते विशेष रूप से विनियमित किया। विद्वज्जनाय मोरवासी ने भीमाभाष्टक मिलकर मध्याह्न को साम्प्रदायिक स्थाप ही और ‘शृङ्गार रम-विहग’ प्रथ में शृङ्गाररत्न की पार्थिव भावना में उपादेयता रीतिर की। नन्ददास ने यही नाम ‘रमणीय’ लिखकर दिया। यही नहीं, उन्होंने अपने गीतात्मिक तथा

प्रथम रूपमंजरी में अपनी रसमंजरी की पक्तियों का स्वतंत्र रूप से उपयोग किया है। साहित्यशास्त्र की दृष्टि से जो रस है, वही भक्तिशास्त्र की दृष्टि से अलौकिक भाव है। इसी सिद्धान्त के अनुसार नन्ददास ने भाव, हाव, हेला, रति को भक्तिभावना के विकास का क्रम भी स्वीकार किया है (दे० रूपमंजरी)। जो हो, रसमंजरी और रूपमंजरी में भाषा-साहित्य में पहली बार हम लौकिक रति और देवुरति का एकात्म स्थापित हुआ पाते हैं।

विरहमंजरी का आधार बारहमासा और मेघदूत हैं। मेघदूत में जिस प्रकार यक्ष मेघ को अपना दूत बनाकर उससे प्रियतमा के पास संदेश ले जाने का प्रस्ताव करता है, वैसे ही इस काव्य में विरहिणी ब्रजवाला चन्द्रमा को अपना दूत बनाती है—

परम प्रेम उच्छ्वलन सौ, बढ्यौ तु तनमन मैं
ब्रजवाला विरहिनी भई, कहति चन्द सौ धैर
अहो चन्द ! रसकंद तुम, जात आदि उहि देख
द्वारावति नैदनन्द सौ, कहियौ बलि संदेश

(१-४)

इसके बाद नायिका प्रत्येक मास का नाम लेकर उसकी श्रुतु आदि का वर्णन कर अपनी दशा बताती है और कृष्ण से आने की प्रार्थना करती है, जैसे

चेत चलौ जिनि कंत, बार-बार पाँ परि कहौ
निपट अखंत बसंत, मैं महा मैमंत जहँ

(४६)

आषट्ठ बलि बैसाल, दुख-निदरन, मुख-करन पिय
उपत्री मन अभिलास, बन-विहरन गिरिवरन संग

(६२)

इस भाव-वर्णन में कवि लोकगीतों के रूप में प्रचलित 'बारहमासा' से बहुत प्रभावित है। 'नरह' ने अपने काव्य 'बीरलरेव रावो' में

‘बारहमासा’ का राजमति के विद्योद्य में उपयोग किया है। हमके शा-
हम नन्ददत्त के काव्य में ही उसका उपयोग पाते हैं, यद्यपि लोक-
साहित्य में बारहमासा का परापर प्रचुर स्थान रहा है। परन्तु ‘विष्णु-
मंजरी’ केवल चन्द्रसन्देश (चन्द्रदूत) और ‘बारहमासा’ तक ही
सीमित नहीं है। उसमें एक कथा भी है यद्यपि कथायुद्ध बहुत ही
है। ब्रजवाला को ब्रजलीला की सुनि आती है जो निम्न है—

पद्मरूपी ब्रजलीला सुनि आई
जहाँ निम्न किगोर कइ आई
सुने कोउ मुख पावत दीर्घ
आगि परे मुख होत है तीर्थ
तब ही नान्य पत्राई मुखी
मधुर-मधुर पंचम सुर झुझी

(१८८-१९०)

यह सुवती ब्रजवाला बहुत ही गीताने के बहाने उस ओर चल देती है
जिस ओर से मुखी की ध्वनि आती है। देखती है, नृपण भवन
लगाये, पाग पररे, अद्भुत छवि बनाये पीरि पर लड़े हैं—

इच्छे प्राप्ति विचार पाये
निधि के मुख मुख ही विचारये

(१९५)

उसको देखकर ‘निधिर विधि’ भी हँस दिवे, बर्षादि वह ती
‘अंतरवासी सब के निधि के’

(१९७)

यह कथायुद्ध भी विद-विद्वान् को प्रविष्टादिग करने के लिए ही
गदा है। बरि ‘विद’ के आर मेर कथा है—प्रायश्च, ब्रजलीला,
हस्त, देवतादि। ‘ब्रजलीला’ की कथा में दूरने देवतादि विद की है
है। हमें ही यह ‘ब्रज की विद’ (१००) कहते

है। पुष्टिमार्ग के धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार ब्रज की लीला नित्य है, कृष्ण नित्य किशोर है, तब देष्टान्तर विरह उपस्थित हो कैसे हो सकता है ! कवि 'देष्टान्तर विरह' की व्याख्या इस प्रकार करता है—

मुनि देष्टान्तर विरह-विनोद, रसिक जनन मन बद्धवन मोद
नन्द-मुवन की लीला त्रिती, मधुरा द्वारापति बहु विती
मुमिरत तदाकार है जाहिं, यह वियोग इहि विधि ब्रज माहि
क्यों मनिकंठ बाँधि कै कोरे, बिसरे बन-वन दूँदत सोरे

(३४-३७)

यहाँ भी ब्रजवाला को द्वारापति लीला की मुधि आती है और वह आकुल हो जाती है—तब नन्दमुवन (अन्तर्यामी है) उसका भ्रम मिटा देते हैं और अपनी नित्य लीला का उसे आभास देते हैं। इस प्रकार 'ब्रज का विरह' वास्तव में संभ्रम-मात्र है। ब्रज में विरह तो है ही नहीं, नित्य संयोग है। ब्रज की लीलाओं से जब भक्त दृष्टि हटा लेता है और कृष्ण को अन्य लीलाक्षेत्र में देखने लगता है, तो एक प्रकार का विरहामास उसे हो जाता है।

हम बता चुके हैं कि मानमञ्जरी और अनेकार्थमञ्जरी साहित्य अथवा धर्म की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं है। वे कोप मात्र हैं। मान-मञ्जरी को पर्यायवाची शब्दों का कोप समझना चाहिये जो 'अमरकोष' के अनुसरण में लिखा गया है। भूमिका में कवि लिखता है—

मुंघनि नाना नाम की, 'अमरकोष' के भाद
मानवतों के मान पर मिले अर्थ सब चाह

(५)

विचित्रता यह है कि दोहे की पहली पंक्ति में पर्यायवाची शब्द है और दूसरी पंक्ति में राधा विकसित किया गया है। राधा मानाती है। उसे नन्दलाल आती है।

जातम्य के सदन सब, मानिक गच छवि देत
जहाँ तहाँ नर-नारि निज, भई मुकि-मुकि लेत
रूपे की गोसाल तहँ.....
घबल नवल ऊँचे अटा, करत घटा सौ बात
दुति न कहि परे भवन की, सुर भूले दिलि माँति
(२६-२८)

वृषभानु के पेशवों का भी विचक्षण चित्रण किया गया है।
सली वहाँ पहुँचती है जहाँ राधा 'दुग्धदेनसम सेत्र पर' बैठी है। फिर
राधा के अंग-प्रत्यंग का वर्णन है। सली बड़ी देर तक उसका सौंदर्य
ही देखती खड़ी रहती है (१४४), फिर डरती-डरती राधा के पास
जाती है। राधा क्रोध से पूछती है—'इहाँ फिरती है, कुशल तो है।
बढ़ उसके सौंदर्य की प्रशंसा करती हुई कृष्ण की ओर उसकी अनुरक्ति
बढ़ाती है। कहती है कि कृष्ण तो तेरा भ्रमंग-माय से काँते हैं।
कृष्ण की प्रशंसा के बराने नन्ददास कृष्ण-सम्बन्धी-बहलभ सम्प्रदाय
की मान्यताओं पर भी बड़ी चतुरता से प्रकाश डालते हैं (२१२-२८०)।
इसके बाद राधा-सली का वाचानुयं दर्शनीय है। सली कहती है कि
सॉफ़ हो गई, अटवी में कृष्ण अकेले हैं, मान कर छोड़ वहाँ चल।
ये बंशी में बह रहे हैं—हे प्राणेश्वरी, आओ। अति सर्वत्र भभी नरी
होती। अन्त में राधा-मायव का मिलाप होता है। अन्त में नन्ददास
की प्रार्थना—

जुगलकिशोर सदा बसहु, 'नन्ददास' के हीय
(५२८)

मे प्रिय समाप्त होता है। इस प्रकार की योजना से ग्रंथ की सरलता
बढ़ गई है।

अनेकार्थ मञ्जरी ऐसे शब्दों का कोष है जिनके अनेक अर्थ होते
हैं। इसकी भूमिका में भी ग्रंथ की सामिक पुट देने की योग्यता
कई है—

एकै वायु, अनेक हैं जगमगात जग-धाम
किमि बचन हैं किहिनी, कवन, कुंडल नाम

(२)

इन शब्दों के भी कुछ दोहों में जगमगाती के रूप पर अतिशय ही आसो या एक कारण से कुछ चमत्कार करने की चेष्टा की गई है, यद्यपि जो कहा गया है, उसमें उस प्रकार मात्तव्यता नहीं है, जिस प्रकार 'जगमगाती' में ।

इन दोनों श्लोकों के अध्ययन से यह पता चलता है कि महाकाव्य में आया वा अछूटा शब्द अवलम्बित किया था । इसी कारण है कि उनकी भाषा-शैली वा शीघ्र उनका अपना-अपनी पंक्ति है और वह 'कविता' की प्रतिष्ठा प्राप्त कर गये हैं । उनका ऐसी वा प्रयोग आत्म उपगुण और विविध है ।

२—रघुममगाई

रघुममगाई एक छोटा-सा कथा-ग्रन्थ है । शिवर नाम के दो श्लोक हैं । महाकाव्य में आया के अर्थ द्वारा जाने जाने और कथा के भावपूर्ण वा उसे अच्छे करने की एक कथा महाकाव्य में मिली है जो इस प्रकार है—

जिह दोहनी जगदी गी ग्याही

जिहि विचरन हरि हूँते गिरिजि गुण, कोरन कोरनि जग
रघुन की, ही जगिहनि की, एक की गये क-रु
और अरि सब बरों दारो, हरिनी देवु दुराई
बहु सुनने अरिज की बराने, जानि वही दुराई
महामा जगजगिहनि उर दी, जगो कुँवरि रघु
५ ५ जगजगिहनि जग जग जग जग
देवदु ग्याही गुण जगदी की, बहु हरि की ग्याही

हम आगे आगनि, यह पाई, परनि गरी महारई
 गिर तैं गई दोहनी दरिहै, आगु रही मुखरई
 स्वाम भुजंग बरषी हम देखन, स्थावदु गुनी बुनारई
 रोवति जननि कंड लागदानी, गूर स्वाम गुन-गारई

× × × औरै दया गई दिन बीतर, बोले गुनि नगर तैं
 गूर गारुड़ी गुन करि पाके, मंत्र न लागत घर तैं
 चले सब गारुड़ी पड़ितार ।

नैकहुं नहि मन्त्र लागत, समुक्ति काहु न बार ॥
 बात ब्रूमल संग एगिबनि, कही हमहि दुभार ।

× × गूर प्रभु की बेगि स्थावदु, बड़ी गारुदि यह ॥
 नन्दमुवन गारुड़ी बुलावहु ।

कहौ हमारी मुनत न कोऊ, दुरत बाहु ले आवहु ॥
 ऐसी गुनी नही विभुवन कहूँ, हम जानति हैं नीकें ।
 आह बार तो दुरत त्रिपावहि, नैकुं छुवत उठै बीकें ॥
 देखौ घौ यह बात हमारी, एकहि मन्त्र त्रिवाये ।
 नन्दमहर को सुत गूरज की, कैसेहुं झों लौ आवे ॥

× × बेगि चली त्रिय कुँवर कन्हारई ।

आ कारण हम यह मन सोयी, सो त्रिय मदन मुजगम सारई ।

× × × वृषभानु की घरनि जगोमति पुकार्यौ ॥

पढे सुत काज की कहित हो लाज तजि, पाह परिके महरि करत आर्यौ ।
 प्रात खरि कहि गई, आह विहल भई, राधिका कुँवरि कहूँ बस्यौ कार्यौ ।
 सुनी यह बात, मैं आई अतुरात, झों, गारुड़ी बड़ी है सुत दुगहारौ ।

× × × जमुमति कह्यौ, सुत बाहु कन्हारई ।

कुँवरि त्रिवायै अतिहि भलाई ॥

× × हरि गारुड़ी तहाँ तब आवे ।

यह बानी वृषभानु-मुता मुनि, मन-मन हरष बढ़ाये ।

× × रोवति महिर फिरति वितलानी ।

बार-बार लै कंठ लगावात, अतिहि सिधिल भई बानी ॥

नन्दसुवन कै पाइ परी लै, दौरि महिर तब आइ ।

व्याकुल भई लादिली मेरी, मोहन देहु जिवाइ ॥

कुछ पढ़ि पढ़ि कर, अंग परस कर, बिप अपनौ लियौ भारि ॥

सुरदास प्रभु बड़े गाढ़ड़ी, सिर पर गाढ़ूं डारि ।

× × × सोचन दये कुँवरि उधारि ।

कुँवर देख्यो नन्द कौ तब सकुची अग सम्हारि ॥

बात बूमति जननि सौ री कहा है यह आज ।

भरत तैं तू बची प्यारी करति है कह लाज ॥

तब कहति तोहि कारैं खाई कछु न रहि मुधि गात ।

सुरप्रभु तोहि व्याह लीन्ही कहो कुँवरि सौ मात ॥

(सुरसागर, ना० प्र० सभा, पृ० ८०२-८१२)

जान पड़ता है कि नन्ददास इस सामग्री से परिचित थे । उन्होंने इस पर एक स्वतन्त्र कथा-ग्रंथ रचने की सम्भावना देखी । फलस्वरूप श्यामसगाई की रचना हुई । एक दिन राधे कुँवरि नन्द के घर खेलने आईं । अनुपति ने उसे देखकर मन में सोचा कि यदि यह कन्या श्याम के लिए बधू-रूप में प्राप्त हो, तो अच्छी जोड़ी मिले । उन्होंने एक ब्राह्मणी बुला कर उसे वृषभानु के यहाँ सन्देश देकर भेजा—

बाइ कहौ वृषभान सौ, करियौ बहु मनुहारि

यह कन्या मैं श्याम कौ, माँगौ गोद पहारि

कि जोरी सोइनी

बरसाने आकर ब्राह्मणी ने यह सन्देश पहुँचाया परन्तु कीर्ति (राधा की माता) ने इस सम्बन्ध से इन्कार किया—

कीर्ति उत्तर देषी, सु हो नहि करौ सगाई

एसी राधे कुँवरि, श्याम है अति चरकाई

मुनत मुगाई राम खाल मुव अंगनि फूले
 नावत-नावन जले, प्रेमरस भे अनुहसे
 अमुमति रानी पर लागी, मोनन चौक दुगाह
 भेटत बघाई नन्द के, 'नन्ददास' बलि जाह
 कि बोरी मोहनी

राष्ट्र है कि कवि की दृष्टि केवल क्या पर है। विशेष साहित्यिकता का ध्यान उगे नहीं है। हाँ, यह पता चलता है कि मोड़े में क्यागूब के आधार पर नन्ददास काज्जी छागी इमास्त लट्ठी का करने में। मङ्गलधन्याप्रदाय में राधा स्वीया है। गुरदास ने राम में पहिले उनके रिवाज की दोहना की है। गुरदास के शिष्य नन्ददास और आगे बढ़कर पगाई भी बना देते हैं।

३—भैरवीगीत

भैरवीगीत नन्ददास की एक बहुत प्रसिद्ध रचना है उसकी ही प्रसिद्धि, जिनका गुरदास का 'अमरगीत'। अमरगीत के ही जितने कवियों के 'अमरगीत' उपलब्ध हैं और ऐसे ही 'अमरगीत' लिखने की प्रथा हमारे समय तक चली आयी है।

'अमरगीत' की कथा का आधार भागवत दशमस्कन्ध अध्याय ५३वें की कथा है। नन्ददास ने कुछ द्वारा उद्धृत की कथा का आधार, इन्द्र-बाधा, नन्ददास के घर उनका बराबर, लैरिरी का रूप देकर मध्यम आदि प्रयोग लीह दिये हैं। उन्होंने जितनी कथा का आधार लिखा है, जितनी कथा की ही इस वहाँ गुनना करते। भागवत में "इन्द्र-बाधा-लैरिरी और अमरगीत" इस प्रकार है—

'इन्द्र-बाधा' इस कहानी है कि आर हमारे इन्द्र-बाधा—नहीं, नहीं अमरगीत के पार्श्व है। उन्ही का लैरिरी लेकर वहाँ पवारे हैं। आरके लैरिरी में आरके भागवत की मुक्त देते के लिए आरके वहाँ देखा

मान्य करने लगी। उनके द्वार में एक एक करके ब्रिजनी भी भूतियाँ बगती, इलाह बिना न हाँदती। वे आत्म विमूढ़ होकर स्वा गुणभ लाश को भी भूल गयी और फूट फूट कर रोने लगी। एक गोरी को उस समय स्मरण हो रहा था भगवान् भक्त्या के मिलने की लीला का उसी समय उसने ऐसा कि पान ही एक भोग गुनगुना रहा है। उसने ऐसा समझा मानो मुझे कड़ी दुई समझकर भक्त्या ने मनाने के लिए इसे भेजा हो। वह गोरी और से हम प्रचार कहने लगी।

गोरी ने कहा—मधुकर! तू करीब का लगा है, इसलिए तू भी करीब है। तू हमारे पैरों को मत छू। झूठे प्रणय करने हमने अनुनय-विनय मत कर। हम देव रही हैं कि भोक्त्या की जो बनाना हमारी लीनों के यदुपल के राशों से मसली हुई है, उसका पीला-पला कुंकुम तेरी मूँछों पर भी लगा हुआ है। तू स्वयं भी तो किसी कुंकुम से प्रेम नहीं करता, यहाँ से वहाँ उड़ा करता है। जैने तेरे स्वामी, ऐसा तू! मधुपति भोक्त्या मधुष की मानिनी नायिकाओं को मनाया करे; उनका वह कुंकुम रूप कृपा-प्रसाद, जो यदुपलियों की सभा में उदास करने योग्य है, अपने ही पान भरण। उमे तेरे द्वारा यहाँ भेजने की कृपा आश्चर्यकता है। जैने तू बाला दे, वैते हो वे भी निवले। देव तो, उन्होंने हमें केवल एक बार—हाँ ऐसा ही लगता है—केवल एक बार अपनी ललित मोहनी और परम मादक अधर मुखा निगाहें भी और फिर हम भोभी-माली मोदियों को छोड़कर वे यहाँ से चले गये। पता नहीं, मुकुमारी रुद्धी उनके चरण-कमलों की सेवा कैसे करती रहती है। अवश्य ही वे छेल-छुगले भोक्त्या की चिकनी-चिपुड़ी बातों में आ गई होगी। चितचोर ने उनका भी चित चुरा लिया होगा। अरे भ्रमर! हम घन-वासिनी हैं। हमारे तो घर-द्वार भी नहीं है। तू हम लोगों के सामने यदुवशशिरोमणि भोक्त्या का बहुत-सा गुणगान क्यों कर रहा है? यह सब कला हम लोगों को

जब उन्होंने करिदास बाल को व्याध के समान द्विपक्षर बड़ी निरद्वेषता
 । मारा था । बेचारी रघुनाथ कामचष्ट उनके पास आया भी, परन्तु
 उन्होंने अपनी स्त्री के बच होकर उस बेचारी के नाक-कान काट लिये
 और इस प्रकार उसे मरुत कर दिया । जाने दो उस समय की बात,
 राक्षस के घर बामन के रूप में जन्म लेकर उन्होंने क्या किया । बलि
 ने तो उनकी पूजा की, उनकी मुहूर्वांगी वातु दो और उन्होंने क्या
 किया । उसकी पूजा ग्रहण करके भी उसे बचपना से बांधकर
 गला में डाल दिया । ठीक वैसा ही, जैसे कौआ बलि ग्राहक भी बलि
 देनेवाले को अपने अन्न साधियों के साथ मिलाकर पेट लेता है और
 परेशान करता है । अम्हा, तो अब जाने दूँ; इसे कृष्ण से क्या,
 किसी भी बालो वातु से कोई प्रयोजन नहीं है । हम बालों की मित्रता
 से कात आई । परन्तु यदि नृप कहें कि 'अब ऐसी है बात तुम लोग
 उनकी चर्चा क्यों करती हो । तो भ्रमर ! हम सब कहती हैं, एक बार
 जिसे ठसका चसका लग जाता है, वह उसे छोड़ नहीं सकता ।
 ऐसी दशा में हम चाहने पर भी उनकी चर्चा छोड़ नहीं सकती ।
 क्या करें ! देख न, श्रीकृष्ण की लीला रूप अमृत की कुछ बूँद
 उसके बानों में पड़ जाती है, जो उसके एक कण का भी स्वादान
 कर जाता है, उसके राग द्वेष आदि सारे द्वन्द्व छूट जाते हैं । संसार
 के सुख-दुःख उसके सामने से भाग लड़े जाते हैं । यहाँ तक कि बहुत
 से लोग अपनी दुःखमय—दुःख से सनी हुई पग-पहरेथी छोड़कर
 अकिञ्चन हो जाते हैं, अपने पास कुछ भी समझ-परिग्रह नहीं रखते,
 और पालियों की तरह चुन-चुनकर—भीख माँगकर अपना पेट भरते
 हैं, दीन-दुनिया से जाते रहते हैं । फिर भी श्रीकृष्ण की लीला-कथा
 छोड़ नहीं पाते । वास्तव में उसका रस, उसका चसका ऐसा ही है ।
 यही दशा हमारी हो रही है । जैसे कृष्णधार मृग की पत्नी भोली-
 भाली हरिनिर्घो व्याध के सुमधुर गान का विश्वास कर लेती है, वैसे
 ही हम भोली-भाली गोपियों भी उस छुलिया कृष्ण की मोटी-मीठी

गोपियों के एकमात्र शुद्धी सच्चे स्वामी हो। श्यामसुन्दर ! तुमने बार-बार हमारी व्यथा मिटाई है, हमारे संकट काटे हैं। गोविन्द, तुम गोश्रो-से बहुत प्रेम करते हो। क्या हम गौयें नहीं हैं ? तुम्हारा यह सारा मोकुल—जिसमें बाल-बाल, माता-पिता, गौयें और हम गोपियाँ, सब कोई हैं—कुल के अपार सागर में डूब रहा है। तुम इसे बचाओ, आओ, हमारी रक्षा करो ॥ ३६-५२ ॥

श्री शुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण का प्रिय सन्देश सुनकर गोपियों के विरह की व्यथा शान्त हो गयी थी। वे इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्ण को अपने आत्मा के रूप में सर्वत्र स्थित समझ चुकी थीं। अब वे बड़े प्रेम और आदर से उदवती का सत्कार करने लगीं। उदवती गोपियों की विरह-व्यथा मिटाने के लिए कई महीनों तक वहाँ रहे।”

नन्ददास ने इस सारे प्रसंग को एक नये कलात्मक ढंग से उपस्थित किया है। ‘सौहृद’ की दृष्टि से भँवरगीत की सामग्री को इस प्रकार रत्न का सज्जा है—

(१) भूमिका—जबो कहते हैं कि श्याम ने उनके हाथ एक संदेश भेजा है। उसे कहने का अवसर उन्हें अब तक नहीं मिल सका था। अब वे उसे कहकर मधुपुरी लूट जाना चाहते हैं (१-१०)

(२) ‘श्याम’ का नाम सुनते हुए गोपियों की विह्वल प्रेम-दर (१०-१३) -

(३) गोपियाँ सत्कार कर उदवती को बैठाती हैं और कुशल-च्छे पूछती हैं (१५-२०) -

(४) जबो कहते हैं कि श्रीकृष्ण मधुरा ने ब्रज आयेगे (२०-२५)

(५) गोपियों की रूपावलि और मूर्च्छा (२५-३०)

(६) जबो-गोरी-सम्वाद (३१-१४०) । एक पद में जबो का तनू में गोपियों का, इसी तरह सारा सम्वाद निर्गुण-सगुण, योग के योग के दृष्ट पर आश्रित है।

“मममान भीकृष्ण का प्रिय संदेश मुनकर गोविंदों के निरह को
 भया घान्त हो गई भी । इन्द्रियातीत मममान भीकृष्ण को अपने आत्म
 के रूप में सर्वत्र स्थित समझ चुकी थी । अब ये बड़े प्रेम और आश्चर्य से
 उद्विग्न हो कायर करने लगी ।” (श्लो० ५३)

ऊँची के मधुर स्मृत कर कृष्ण पर मोघ करने और उनका मायात्मक
 भ्रम दूर करने की कथा नन्ददास को मौलिक सुझा दे । भागवत तो ये कथा
 हतना ही कहती है—“यहां (मधुर) पदों-नकर उन्होंने मममान भीकृष्ण
 को प्रणाम किया और उन्हें मममानों को प्रेम-नया भक्ति का उद्देश्य
 प्रेमा उन्होंने देखा था, वह सुनाया ।” (श्लो० ६६)

इस प्रकार हम देखते हैं कि लगभग सारी कथा नवीन ढंग से बहुत
 कुछ मौलिक प्रयोगों के साथ उपस्थित की गई है । यह मौलिकता कहाँ
 परों है, और क्यों है, यह प्रश्न अनुचित नहीं होगा । नन्ददास के भक्ति-
 गीत के भीत आधार है—

(१) निर्गुण पर सगुण की विषय या तर्कपूर्ण स्थापन ।

(२) योगमार्ग और ज्ञानमार्ग की निष्कलता की घोषणा और इन
 पर प्रेममार्ग की विषय ।

(३) गोविंदों की रूपभक्ति और प्रेममार्गिक का विचार निरूपण ।
 भागवत में पहले और तीसरे विषय पर लिखा आ चुका है । परन्तु
 दूसरा विषय परिचित-नव है । गोमनाम के योगमार्ग और मूर्तों
 के ज्ञानमार्ग के प्रति अवस्था और इनका विरोध लक्ष्य है । भागवत में
 सभी मार्ग स्वीकार कर लिए गये हैं, क्योंकि प्रेममार्ग ही सर्वोत्कृष्ट माना
 गया है । पुष्टिमार्ग में परम प्रेम स्वयं भीकृष्ण के आकार रूप लीला
 को ही प्रेमभावना उपादेय भी । इस प्रकार हम ग्रंथ पर भी माधुर्य
 की लक्ष्य पड़ी है । परन्तु हम पाद का एक दृष्टि स्थान पर और
 भी गहरा पाते हैं । पुष्टिमार्ग के कृष्ण तो निरह हैं, उनको
 कहलीला भी निरह है, इसलिए गोविंदों का देहाग्रर निरह केवल

“भगवान् श्रीकृष्ण का प्रिय सन्देश सुनकर गोपियों के विरह की स्थिति शान्त हो गई थी। इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्ण को अपने आत्मा के रूप में सर्वत्र स्थित समझ चुकी थी। अब वे बड़े प्रेम और आदर से उद्वज्जो का सत्कार करने लगीं।” (श्लो० ५३)

ऊधो के मथुरा लौटकर कृष्ण पर क्रोध करने और उनका मायाजन्य झम दूर करने की कथा नन्ददास की मौलिक सूझ है। भागवत तो केवल इतना ही कहती है—“बस (मथुरा) पहुँचकर उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की प्रणाम किया और उन्हें ब्रजवासियों की प्रेममयी भक्ति का उद्रेक, जैसा उन्होंने देखा था, कह सुनाया।” (श्लो० ६६)

इस प्रकार हम देखते हैं कि लगभग सारी कथा नवीन ढंग से बहुत कुछ मौलिक प्रसंगों के साथ उपस्थित की गई है। यह मौलिकता कहाँ कहाँ है, और क्यों है, यह प्रश्न अनुचित नहीं होगा। नन्ददास के मैवर-गीत के बीज आधार है—

(१) निर्गुण पर सगुण की विजय का तर्कपूर्ण स्थापन।

(२) योगमार्ग और ज्ञानमार्ग की निष्फलता की घोषणा और इन पर प्रेममार्ग की विजय।

(३) गोपियों की रूपासक्ति और प्रेमासक्ति का विशद चित्रण।

भागवत में पहले और तीसरे विषय पर लिखा जा चुका है। परन्तु दूसरा विषय परिस्थिति-जन्य है। गोरक्षनाथ के योगमार्ग और संतों के ज्ञानमार्ग के प्रति अवस्था और इनका विरोध लक्ष्य है। भागवत में सभी मार्ग स्वीकार कर लिए गये हैं, यद्यपि प्रेममार्ग ही सर्वोत्कृष्ट माना गया है। पुष्टिमार्ग में परम प्रेम-स्वरूप श्रीकृष्ण के साकार रूप लीला की ही प्रेमभावना उपादेय थी। इस प्रकार इस ग्रंथ पर भी सम्प्रदाय की छाप पड़ी है। परन्तु इस छाप को एक दूसरे स्थान पर और भी गहरा पाते हैं। पुष्टिमार्ग के कृष्ण तो नित्य हैं, उनकी नबलीला भी नित्य है, इसलिए गोपियों का देशान्तर विरह केवल

× × उद्धव कहते हैं—

यह अच्युत अविगत अविनाशी
त्रिगुण रहित वपुधरे न दासी
हे गोपी, मुनु बात हमारी
हो यह शय्य मुनहु ब्रजनारी
नहि दासी ठकुराइनि कोई
अहं देखह तहं ब्रह्महि सोई
आपुहि श्रीगहि ब्रह्महि जानै
ब्रह्म बिना दूसर नहीं मानै

इस पर गोपियों कहती हैं—

बार बार ये वचन निवारो
'भक्ति विरोधी' ज्ञान तुम्हारे
होत कदा उपदेसे तेरे
नयन सुषण नाही अलि मेरे !
हरिपथ जोवत निमिष न लागे
कृष्ण विद्योगिनि निशिदिन आगे

× × × सैकड़ों पदों में इस प्रकार की ही त्रिचार-धारा और भावना का विकास हुआ है। नन्ददास इस सारी सामग्री से भली भाँति परिचित थे। अतः वे इसकी एकदम अपेक्षा कैसे करते ? हाँ, इस नितान्त बिकरि सामग्री को एकदम में बाँधने और उसे खंडकाव्य का रूप देने की कुशलता उनकी अपनी चीज है, और इसके लिए उन्हें शेष अवश्य ही मिलना चाहिए। एक पद में भी सूरदास ने भ्रमरगीत कहा है—

यह उपदेश कसो है माघी
करि विचार समुल है साधी

अवतार का उद्देश ही यह है कि धर्म की स्थापना हो और अधर्म का नाश। वे धर्ममर्यादा के बनानेवाले, उपदेश करनेवाले और रक्षक थे।' शुकदेवजी शंकासमाधान करते हैं—'सूर्य, अग्नि आदि कभी-कभी धर्म का उल्लंघन और साहस का काम करते देखे जाते हैं। परन्तु उन कामों में उन तेजस्वी पुरुषों को कोई दोष नहीं होता। देखो, अग्नि सब कुछ खा जाता है, परन्तु उन पदार्थों के दोष से लित नहीं होता' (१०-३३-३०)।

'जब भगवान् अपने भक्तों की इच्छा से अपना चिन्मय शीविग्रह प्रकट कर देते हैं; तब भला, उनमें कर्म-बंधन की कल्पना हो कैसे हो सकती है।'।

'ब्रजवासी गोपों ने भगवान् भोक्तृत्व में तनिक भी दोष-बुद्धि नहीं की। वे उनकी योगमाया से मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास हैं' (३०-३६)।

नन्ददास को भी इस व्याख्या की आवश्यकता पड़ी और उन्होंने सिद्धान्तपंचाध्यायी की रचना की। इस ग्रन्थ का विश्लेषण करने पर हमें पता लगता है कि उसने विरोधियों के तर्कों का उत्तर किस प्रकार से, किस क्रम से दिया है। वह विश्लेषण इस प्रकार है—

१. आश्रयतत्त्व १—१६
२. रास कर्षो, मदनगर्वहरण के लिए १६—२४
३. रास-रस २५—२६
४. रास के नायक कृष्ण की पाप-पुण्य निरपेक्षता २७—३७
५. वृन्दावनतत्त्व ३६—४०
६. रास की भूमिका ४१—५०
७. वेतुषादन ५०—५५
८. गोपियों की कृष्णप्रेमता ५६—७४
९. गोपीमेम ७५—८६

और

पुद्गल-रेनु उड़ि पगी, कहति तिन सो मगु बानी

गुणम गुणम के द्वार, उदार सखी गुदि लार्ने
 का सो भुंवरि न परगै, अर सो निकट पगार्ने
 अपने कर गु विरह-गुर, जानति अति ही ताते
 मति गुरभङ्ग सो माला, बाला हरपति पाते

भागवत में द्वारका का किशित भी वर्णन नहीं है—‘वे ब्राह्म
 द्वारकापुरी में पहुँचे, तब दामपाल.....’ परन्तु नन्ददास ‘पुरी पर-
 मापुरी, पाहि के पाकित भयो नित’ (५५) से आरम्भ करके—

ब्रह्म, रुद्र, अमरेंद्रचूँद की भीर बुलावे

भीतर जान सो पावे, बिदि हरिदेव बुलावे (८६)

तक पुरी के सौन्दर्य, रंगमहल की शोभा और कृष्ण के ऐश्वर्य
 का वर्णन करते हैं। भागवत में रुक्मिणी विप्र के हाथ लँदेया भेजती
 हैं, परन्तु नन्ददास तो रसधारण में पारंगत ठहरे, वे शृङ्गारधारण
 को उपयोग में लाने का ऐसा मौका रूप ढोड़ते। उन्होंने ‘पाती’ की
 योजना की है—ऐसी ही योजना ‘भ्रमरगीत’ प्रसंग में गुरदास ने भी
 की है, उदय कृष्ण की पत्नी लाते हैं। विरह-काव्य में प्रेमी-प्रेमिका की
 पत्नी का एक प्रमुख स्थान है। नन्ददास ऐसा म का कैसे ढोड़ते—

तब बाकगनि को कागर, नागर मेह नवीनौ
 बछन-स्योर हैं ह्योरि, विप्र भीषट-कर दीनौ
 मुद्रा लोलि गोविन्दचन्द, जब बाँचन बाँचे
 परम प्रेम-रस साँचे, अचलुर परत न बाँचे
 भदरि दिवौ सिरायत, लावत ले ले छाती
 लिपी विरह के हाथन, पाती अन्हूँ ताती
 दिये लाह, सखु पाह, बहुनि द्विजवर को दीनी
 रुक्मिनि अँगुवन भीनी, पुनि हरि अँगुवन भीनी

(१०१-११०)

भागवत में इक्षिमणी ने सन्देश द्वारा अपने हरने की सब तरकीब बता दी है—‘हमारे कुल का ऐसा नियम है कि विवाह के पहले दिन कुल-रत्नी का दर्शन करने के लिए एक बहुत बड़ी यात्रा होती है, जलूस निकलता है—जिसमें विवाही जानेवाली कन्या को नगर के बाहर गेरिजा देवीजी के मन्दिर में जाना पड़ता है। उस समय आप मुझे प्रासानी से ले जा सकते हैं।’ परन्तु नन्ददास की विरह-पाती विरह-गती है, उसमें इस प्रकार की कोई बात नहीं। इससे काव्य में सौन्दर्य प्राप्त होता है और कृष्ण का प्रयत्न उद्धारमात्र न होकर ‘नयक का नायिका के प्रति प्रयत्न’ हो जाता है। इस प्रकार हम स्पष्ट देखते हैं कि इक्षिमणी मंगल जैसे छोटे काव्य में भी नन्ददास वहाँ तक मौलिक होने की चेष्टा करते हैं और वे किस तरह रीतिशास्त्र के आधार पर अपनी रचना को खड़ा करते हैं।

भागवत में कृष्ण के कुन्दनपुर पहुँचने पर उनके प्रयत्न और युद्ध एवं विपत्तियों को तैयारी आदि का विस्तृत वर्णन, परन्तु कृष्ण के सौन्दर्य का वहाँ वर्णन नहीं है, परन्तु नन्ददास ऐसे सम्प्रदाय के कवि थे जिसमें रूपासक्ति अध्यात्म-वाधना की पद्दी सीढ़ी थी। उन्होंने कृष्ण के सौन्दर्य का नरनारियों पर अद्भुत प्रवास दिखाया है, भले ही वर्णन अप्रासंगिक हो गया हो। इस स्थल पर वे भागवत के ही दूसरे स्थल—भीकृष्ण का मयुरा-प्रवेश—से सहारा लेते जान पड़ते हैं—

पुर के लोगन सुनी, कि भी सुन्दर घर आये
 वहाँ तहाँ तैं आये, देखि हरि निश्चय पाये
 कोटि काम-लावन्य-धाम, अँग सँवरे विय के
 जे जे जाको दृष्टि परे, ते भये तित ही के
 कोउ ओछलक छुवि उरके, अथ हैं नाहिन मुरभे
 सलित लटपपी पतिया, सकि सकि तहै तहै मुरभे

कोउ कटीली मौहन, निरगत विवस करे हैं

कोउ कोउ हड़ छवि गिनत गिनत ही हारि परे हैं

इत्यादि

भागवत में देवी रुक्मिणी को आशीर्वाद नहीं देती, परन्तु यहाँ कदाचित् रामचरितमानस के आधार पर—

हैं प्रसन्न अभिष्ठा कहति, मुनि रुक्मामनि मुन्दरि ।

पेहे अर गोविन्दचंद, जिय जिन बिगद करि

भागवत और नन्ददास दोनों में रुक्मिणी के अलौकिक सौन्दर्य और रुक्मिणी-हरण का सुन्दर चित्रण है, परन्तु नन्ददास उपमा-उत्प्रेक्षा के सहारे भागवतकार से ऐसी बाज़ी मार ले गये हैं—

‘इसके बाद जैसे सिंह सियारों के बीच में से अपना भाग ले जाय, वैसी ही रुक्मिणीजी को लेकर भगवान् श्रीकृष्ण—”

(भागवत)

ले चले नागर नगधर, नवल तिया कौरे सैं

मॉलिन आँलिनधूरि पूरि, मधुहा मधु चैतैं

गहड़ हरी जिमि मुधा, दर्प सब सपन कौ हरि

तैमैं हरि ले चले, आपनौ सरब खेल करि

मुन्दर सँवरे पिय संग, अति ही आमा भासी

अनु नव नीरद निकट, चारु चंद्रिका प्रकासी

भागवत के जीवनवै अर्थात् की मुद्रा, परस्पर व्यंग्य, रुक्म की पराजय आदि के जो प्रसंग हैं उनमें मधुर रस को कोई खगड़ नहीं मिल सकती थी। इन सबको नन्ददास ने अत्यन्त संक्षेप में रस दिया—अभिर्भाष उपमा-उत्प्रेक्षाओं के सहारे प्रसंग को व्यंजित करने की चेष्टा भर की, न अरास्य और शिशुमाल के महान प्रयत्न का ही चित्र है, न की गालियाँ हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने सारी कथा

की अत्यन्त रसमय नवीन योजना दी है। उसने पौराणिक कथा को सुन्दर काव्य बना दिया है। इससे छोटा सफल काव्य मिलना असम्भव है। नन्ददास की रचनाओं में रुक्मिणी मंगल को भी उतना ही विशिष्ट स्थान मिलना चाहिये जितना रासपञ्चाध्यायी या भ्रमरगीत को मिलता है।

६—दशमस्कन्ध

‘दशमस्कन्ध’ भागवत के दसवें स्कन्ध के पहले २६ अध्यायों का अनुवाद है—या कहिये, संक्षिप्त भावानुवाद है जिसमें सिद्धान्तों के रूप में नन्ददास ने अपनी ओर से भी बहुत कुछ जोड़ दिया है—

‘क्यों सिद्धान्त-रत्न उद्ग्रीव ?’

प्रसिद्ध जनश्रुति है कि नन्ददास ने भागवत का भाग में अनुवाद किया। ‘वार्ता’ में स्पष्ट लिखा है कि तुलसीदासजी की भाषा रामायण देखकर उन्हें भाषा में पदबद्ध भागवत-उल्लेख उपस्थित करने की चाह हुई, परन्तु जब वे अनुवाद कर चुके तो पंडितों को मालूम हुआ। उन्होंने जाकर गुसाईजी से कहा कि इससे भागवत कथा-वाचकों की रोजी जाती है। कहीं लिखा है कि आचार्य ने नन्ददास को आश की कि केवल पंचाध्यायी छोड़कर सारा ग्रंथ नष्ट कर दो (दे० भारतेन्दु का हृत्पत्र), कहीं यह कि पंचाध्यायी तक की ब्रजलीला रस लो, शेष ग्रंथ नष्ट कर दो। अब जो ग्रंथ प्राप्त है उनमें पंचाध्यायी तक की सामग्री है—‘पंचाध्यायी’ में का प्रथम अध्याय (२६वाँ अध्याय) भी मिलता है। समझ यह पड़ता है कि भारतेन्दु ने प्रसिद्ध ‘रासपंचाध्यायी’ को ही यह भागवत-उल्लेख की बची ‘पंचाध्यायी’ मान लिया। इसके अतिरिक्त, यदि ग्रंथ ब्रजलीला तक हो गया था तो भी शेष ग्रंथ आते। वास्तव में विशेष सुन्दर और महत्त्वपूर्ण आगे ही थे।

हमारी समझ में तो नन्ददास ने पूरी भागवत का अनुवाद अभी न किया होगा। यह सचमुच यकानेवाला काम होता। हम जानते हैं कि स्वयं गुरुदास इस काम को नहीं कर सके। बात यह है कि ब्रजभक्त सम्प्रदाय के भक्त कृष्ण को छोड़कर अन्य कथाओं में इतनी अभिरुचि नहीं रखते कि उन्हें इन पर काम लिखने का उत्साह हो। इस कथन का यह प्रमाण भी है कि नन्ददास ने अपनी रचनाओं में कृष्ण को छोड़कर और किसी वस्तु को अपना विषय नहीं बनाया। अतएव उनके रामभाक्त-पद हम छोड़ देगे। हमारा तात्पर्य यह है कि "दीक्षा" के बाद उन्होंने अपनी दृष्टि को कृष्ण पर ही केन्द्रित रखा। दूसरी बात यह है कि यदि हम "प्रथम अध्याय" की पहली २० पंक्तियों को समझ कर पढ़ें, तो हमें वात लग जायगा कि नन्ददास ने प्रथम को इसी इनमें संक्षेप से शुरू किया है—

परम विविध मिय इह रहै, कृष्णचरित मुखौ लो यहै
जिन करी 'दशम स्कन्ध' जु आदि, भाग्य करि कबु परतै ताहि

(पंक्ति १, ४)

इससे स्पष्ट है कि प्रचारका हमी दशमस्कन्ध से होता है—हमी से दशमस्कन्ध नाम कार्यक है। परन्तु दशमस्कन्ध की पूरी सामग्री हमने नहीं है, वह नहीं, दशमस्कन्ध पूर्वाह्न की सामग्री भी लगभग खाली है। पूर्वाह्न में ४२ अध्याय हैं, नन्ददास के 'दशमस्कन्ध' में २२ अध्याय हैं। जान पड़ता है कि नन्ददास की इच्छा दशमस्कन्ध को ही सम्पूर्ण करने की थी, परन्तु वे ऐसा नहीं कर सके। हो सकता है कि जब उनकी अंतिम रचना हो और आशा यह गया हो। इस आशय के कारण यह सम्भव है कि प्रथम का अध्याय भाग हुआ दिख गया—यदि ऐसा करने का कोई कारण नहीं था। 'दशमस्कन्ध' पूर्ण सम्पूर्ण का अनुवाद नहीं था, क्योंकि यहाँ के विरह बहुत कुछ सम्पूर्ण सम्पूर्ण के सम्पूर्ण के विरह का ही रह जाती। नन्ददास ने

अपने ग्रंथ में मौलिकता रखी है—उन्होंने उसमें पुष्टिमागीय दर्शन और धर्म पर व्याख्या की है, इससे यह आशा नहीं हो सकती कि गुणार्द्धी उसका और भगवत का मौलिक भेद नहीं समझ पाते। यह सब किम्बन्दी निराधार है। अधिक सम्भव यह है कि २६वें अध्याय तक पहुँचकर नन्ददास को यह पता चला कि वे अपनी एक पुरानी भूमि पर आ गये हैं। २६वें अध्याय से ३३वें अध्याय तक की सामग्री का उपयोग वे “रासपंचाध्यायी” में कर चुके थे। इसी विषय पर अब वे अपनी एक अत्यन्त उत्कृष्ट रचना उपस्थित कर चुके थे, वह उनसे वैसी ही उतने उच्चकोटि की दूसरी रचना किस प्रकार मिल सकती थी। इस तरह उनका उरसाह नष्ट हो गया और वे आगे नहीं बढ़ सके। ‘दशमस्कन्ध’ प्रथम अध्याय और रासपंचाध्यायी की समान सामग्री की तुलना भी की जा सकती है। पता चलता है कि नन्ददास ने दशमस्कन्ध से ‘रासपंचाध्यायी’ की शब्दावली, शैली और पद सग्रह का एक ही उपयोग किया है। जैसे—

विहरत विविन विहार, उदार, नवल नदनन्दन
(रास० २२१)

विहरत विविन उदार, ब्रजरमनी ब्रजराजकुमार
(दशम० १३४)

विलुलित उर-वनमाल, लाल जब चलत चाल बर
(रास० २२५)

विलुलित उर बैजंती माल, लटकत चलत सुमद गज चाल
(दशम० १३८)

कोमल किरन अरुनिमा भई
(रास० १२)

कोमल किरन-अरुनिमा, बन में न्यायि रही यौ
(दशम० १०३)

हैं उन्हें आस्था की प्रकटिष्ट करने की सभाजना मिली। अतः उन्होंने जो आस्था पूरे करने की विन्ता नहीं की और एक रचना रचना रच ही। परन्तु हम जानना चाहते हैं 'दशमस्कन्ध' बाद की रचना है—यह 'रामचरित', 'विरहमञ्जरी' और 'कामचरित' की भेषी की रचना है। इन सब ग्रंथों पर 'मञ्जरी' दाग है—किसी रचित मित्र का आग्रह है। 'विरहमञ्जरी' के कवि ने 'उपनिषद्-रस' की व्याख्या की है—दशमस्कन्ध २६वें अध्याय में कृष्ण उपनिषद् है और गोविन्द अपनी उपाई देती हुई दिलसारी देती हैं—

औ वही उपनिषद् नहिं स्वप्न,
सब कोउ निदित कर्य छति तुम्ह
तहाँ कहति है ब्रजमामिनी,
लहलहाति बन मधु दामिनी
तुम्हरी यह बलगी तबि पीव,
विमुक्तन मोक करन छल तीव
मुनवहिं चारन-यय नहिं रुने,
मुन्दर नन्द-गुन नहिं मने

(पंक्ति ११८-१२१)

इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि दशमस्कन्ध 'विरहमञ्जरी' के साथ ही की रचना है। अतः हम कह सकते हैं कि रासपञ्चाव्यासी की अद्भुत पूर्णता के कारण ही दशमस्कन्ध अधूरा रह गया। वास्तव में नन्ददास के लिए ब्रज से इतर कृष्ण की लीला लिखना भी दुस्तर था। यदि वे 'दशमस्कन्ध' को आगे बढ़ाते भी, सब भी उसे शीघ्र ही पंचाव्यासी के साथ समाप्त कर देते। हम यह बात उनके सिद्धान्तों के आधार पर कह रहे हैं। वे 'ब्रजकृष्ण' के निरवविहार में विश्वास करते थे। उनके कृष्ण ब्रज से बाहर कहीं नहीं गये। इस को लेकर उन्हें 'दिशान्तर-विरह' और 'ब्रज की विरह' की

व्याख्याएँ करनी पड़ी है। अतः उनका अनुवाद पंचांग्यादी के साथ ही समाप्त हो जाता, यह निश्चित है।

दशमस्कन्ध की “कथा का कम मूल के अनुरूप ही है। यद्यपि कुछ स्थलों पर कवि ने मूल कथा का शब्दानुवाद भी किया है तथापि साधारणतया वह भावानुसरण से ही संतोष कर लेता है।” (‘नन्ददास’, पृ० ६६) प० उमाशंकर शुक्ल ने दशमस्कन्ध की तुलना करके यह अन्तर पाये हैं—

“(०) भागवत के द्विज अंशों में शङ्कराचार्य द्वारा प्रसिद्धि अविद्या तथा माया के सिद्धांतों का प्रतिपादन अथवा समर्थन होता है उन्हीं कवि ने बिलकुल छोड़ दिया है। उदाहरणार्थ, ‘भागवत’ के अध्याय ४ में जब योगमाया कंस को वह मूचना देकर अंतर्हित हो जाता है कि उसका मारनेवाला कहीं अव्यय पैदा हो मुझ है तब वह आश्चर्यान्वित होकर अपने दुःकृत्यों पर परवात्ता करने लगता है। वह कहता है अब मुझे शत दुःखा कि देना भी भूट वालन है। तदनन्तर वह देवकी और बभ्रुदेव को हन प्रकार समझता है—

‘दशमभागी, तुम दोनों पुत्रों के लिए शोक न करो। उन्हींने देव कर्म दिये थे वेमे ही वन उनकी भोगना पड़ा। सब प्राणी हैं व भयवन् हैं। अतएव वे सर्वदा एवम नहीं रह सकते। जैसे मिट्टी में धरा आदि उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं, वर मिट्टी देने का कर्म नहीं है, उसी प्रकार देवों की उत्पत्ति और नष्ट होना है। अतएव आश्चर्य ही रहता है। जो लोग बचप से ही इस जगत् का नष्ट मानते उन्हें जो देवोंदि अथवा प्राणियों में शोक बुद्ध होनी है और हमें अग्नि ब्रह्म में प्रवेशन उत्पन्न होना है।

“इस समस्त प्रसंग को कवि ने छोड़ दिया है क्योंकि बल्लम-
ग्रन्थदाय में इस प्रकार की विचारावली का पूर्ण विरोध किया
गया है।

“(२) भागवत के कुछ प्रसंगों को कवि ने सम्भवतः अनावश्यक
विस्तारभय के कारण भी नहीं ग्रहण किया है। तृतीय अध्याय में कृष्ण
देवकी से उसके पूर्व जन्म की कथा कहते हैं जिसमें उन्होंने उसके
रूप से प्रसन्न होकर उसका पुत्र होना स्वीकार किया था। ‘दशमस्कन्ध’
के तृतीय अध्याय में वह कथा नहीं है।

“(३) ‘दशमस्कन्ध (पूर्वाह्न)’ के समादक श्री कर्मचन्द गुगलानी
ने एक ग्रन्थ की भूमिका में यह बतलाया है कि नन्ददास ने
अपने ग्रंथ में श्रीमद्भागवत के टीकाकारों के कुछ भावों का भी
समावेश कर लिया है। उनके अनुसार ‘दशमस्कन्ध’ में श्रीधरस्वामी
की ‘मावार्थ-दीपिका’, श्रीमज्जीवगोस्वामी कृत ‘वैष्णवतोषिणी’ और
श्रीमद्वल्लभाचार्य कृत ‘सुलोचिनी’ से कवि ने सहायता ली है।
नन्ददास अपने ग्रन्थ को पुष्टिमार्गीय सभी उपसंग्रहायों में समाहित
कराना चाहते थे इसीसे उन्होंने इन आचार्यों के भावों को अपनाया
है। यह बतलाया गया है कि बल्लभाचार्यजी के अनुसार श्रीमद्-
भागवत के दशमस्कन्ध में ‘निरोध’ का वर्णन है तथा श्रीधरस्वामी
के मत से उसमें ‘आश्रय’ का वर्णन है। ‘निरोध’ के शब्दार्थ में भी
दोनों आचार्यों में मतभेद है। नन्ददास ने दोनों के मतों का समावेश
कर लिया है।

“(४) कतिपय परिवर्द्धन श्रीमद्भागवत के वर्णनों को अधिक
पूर्ण और रोचक बनाने के विचार से भी किये गये हैं, जैसे प्रथम
अध्याय में मथुरा की प्रशंसा में किंचित् विस्तार कर दिया गया है।
इसी भाँति कुछ अलंकारिक उक्तियाँ भी यत्र तत्र जोड़ दी गई हैं। ये
परिवर्द्धन सामान्य ही हैं।” (वही, पृ० ६६-१०१) नन्ददास का यह

ग्रंथ केवल उनके सिद्धांतों का अध्ययन करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है—कि वे कृष्ण-लीलाओं का क्या अर्थ करते हैं, विभिन्न दार्शनिक विषयों पर उनके विचार क्या हैं। एक दूसरे अध्याय में हमने ग्रंथ के इन स्थलों का उपयोग किया है। काव्य-कला की दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नहीं है। फिर भी नन्ददास के ग्रंथों में, अनेक कारणों से 'दशमस्कन्ध' की उपेक्षा नहीं की जाती।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त नन्ददास ने बहुत से पद भी रचे हैं। सब अभी संपादित रूप से हमारे सामने नहीं आये हैं। वैसे छोटे मोटे संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'नन्ददास' में जो संपादित पद हैं वे ४० के लगभग होंगे। शेष २४८ पद असंपादित ही 'परिशिष्ट' में शीर्षक के अन्तर्गत दे दिये गये हैं। हमने 'नन्ददास का पदावली साहित्य' शीर्षक अध्याय में इन पदों का स्वतंत्र अध्ययन किया है श्री दीनदयालु गुप्त ने ऐसे ४०० पदों की अवस्थिति की सूचना दी है। वरतक नन्ददास के सारे पद प्रामाणिक रूप से संपादित होकर हमारे सामने नहीं आ जाते, तब तक हम कवि के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काव्यांश पर विशेष टीका-टिप्पणी नहीं कर सकते। 'पुष्टिमागं' और 'अष्टछाप' का अधिकांश साहित्य पदों के रूप में है। नन्ददास अष्टछाप के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रत्न हैं। उनके संपादित ग्रंथों में यद्यपि तो अन्य अष्टछाप कवियों के पाठ हैं ही नहीं। अतः अष्टछाप के कवियों में नन्ददास का स्थान आंकने के लिए उनके पद का चाहिए।

ऊपर हमने नन्ददास की उन प्रामाणिक रचनाओं पर विचार किया है जो संपादित होकर 'नन्ददास' में उपलब्ध हैं। परन्तु अन्य ग्रंथों की समस्त अभी पूर्णतया निश्चित नहीं हुई है। 'कृष्णमञ्जरी' जैसी रचना जो केवल कुछ पंक्तियों का एक पदमात्र है अनिश्चित रहे तो कोई बात नहीं, परन्तु नन्ददास के कुछ अनिश्चित ग्रंथ बहुत

नन्ददास की ६ रचनाएँ अप्राप्य कही जाती हैं। जब तक इनकी प्रतियाँ प्राप्त नहीं होती हम इनके सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते। परन्तु नाम से तो यह खान पड़ता है कि मानलीला मानमंजरी होने के ही अन्य नाम होंगे। सम्भव है रासमंजरी और बांसुरीलीला रासपंचाव्यासी के ही नाम हो। निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। काँकरोलीवाले 'गोवर्द्धनलीला' को प्रामाणिक मानते हैं 'नन्ददास' के सम्पादक का कहना है कि यह कोई मूलग्रंथ नहीं है, 'दशमस्कन्ध' के इस प्रसंग की भूमिका और इति बाँधकर किसी ने एक ग्रंथ गढ़ लिया हो। हो सकता है, नन्ददास ने ही ऐसा किया हो।

नन्ददास के काव्य में पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त

पुष्टिमार्ग के कवियों में केवल नन्ददास के काव्य में पन्थ के धार्मिक एवं साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन मिलता है। इन सिद्धान्तों के अध्ययन के लिए सिद्धान्तपंचाध्यायी, विरहमञ्जरी, रूपमञ्जरी, रसमञ्जरी और रासपंचाध्यायी विशेष रूप से पठनीय है। इन ग्रन्थों में भी सिद्धान्तपंचाध्यायी प्रमुख है।

सिद्धान्तपंचाध्यायी में रास-कथा के रहस्यवात्मक एवं आध्यात्मिक रूप को विशेष रूप से स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। प्रथम अध्यायों में विभाजित नहीं है। इससे साफ है कि रास-सम्बन्धी पाँच अध्यायों की विवेचना के कारण ही इसको यह नाम दिया गया है। नीचे हम विभिन्न शृंगारों के अन्तर्गत नन्ददास के सिद्धान्तों का अध्ययन करते हैं।

१—कृष्ण

कृष्ण के रूप, गुण, कर्म अपार हैं—वे परम धाम, बगवाम, परम अभिराम, उदार हैं। आगम, निगम, पुराण, स्मृति, इतिहास—साथ ज्ञान-विज्ञान उनकी निःस्वाय है। उनके पदगुण (६ गुण) हैं। वही नारायण हैं। वही अवतार धारण करते हैं। सबके आश्रय हैं, अविधि भूत हैं। उनकी लीलाओं के कई भाग हैं शिशु, कुमार, पौर्ण्ड्र, बड़े वय की धर्म-संस्थापन लीला, परन्तु वे 'नित्यकिशोर' हैं। विरहूली (शिब) उनकी भाषा के वृष्ट में है। उन्होंने ही इन्द्र का गर्व खर्च किया। रासलीला करके वही मदन (काम) के गर्व को

राते हैं। वे ही ब्रह्म हैं। जीव में उनका धेड़ प्रगट करके ही उन्हें परमात्मा का गकता है—

काल, कर्म, माया-अधीन, ते भीड़ बनाने
विधि-निषेध, अहंकार-पुण्य, तिन में सब साने
परम परम ब्रह्मत्व, ग्यान-विग्यान-प्रकाशी
ते कबौ कहिँ भीड़ सदा, भुक्ति-विम्वर-निवासो
कर्म, काल, अनिमादि, भोगमाया के स्वामी
ब्रह्मादिक कीडान भीड़, सर्वांतरामी

(वि० प० २६—२४)

कृष्ण ही अलंकारानन्द, नन्दनन्दन, ईश्वर, हरि हैं। वे ही अना परमब्रह्म, परमात्म, स्वामी हैं।

२—जीव

जीव काल, कर्म और माया के अधीन है। वे विधि-निषेध और पाप-पुण्य में बँधे हैं। वे संसार की (माया-) घारा में बहे जाते हैं।

३—माया

‘संसार’ का कारण ब्रह्म नहीं, माया है। नन्ददास ने माया को उ कहा है—

रूप, गंध, रस, सन्द, स्पर्श जे पंच बिदे कर
महाभूत पुनि अंच, पवन, पानी, अंबर धर
दस इन्द्रिय अह अहंकार, महत्त्व, विगुन, मन
यह सब माया कर विकार, कहै परमहंस मन

(५८)

‘या हरि (कृष्ण) के अधीन है—

सो माया बिनके अधीन, निर रहत मृगी बल
विरह-प्रभव, प्रतिपाल, प्रलै-कारक, आवस-बल

(६-१०)

नन्दरास के कारण में पुष्टिमार्ग के सिद्धांत

कप्रति, रक्षण, सुसुप्ति अवस्थाएँ भी माया के ही कारण हैं। इस
मार्ग के चक्कर में जीव का ईश्वरीय अंश (आनन्दभाव) तिरोभूत
हो गया है।

४—अवतार

इसी 'आनन्द-भाव' में जीव को प्रविष्ट कराने के लिए अखंडानन्द
(कृष्ण) कद साकर अवतार लेते हैं। भक्ति प्राप्त होने पर जीव ब्रह्म
की भाँति ही आनन्दमूर्ति हो जाता है—

सपन, सन्निधानन्द, नन्दनन्दन, ईश्वर बस
तेहें हैं तिन के भगत, जगत में भये भरे रस

(वि० पं० २८)

५—वृन्दावन

आनन्द की श्रीदाभूमि चिदधन है, कृष्ण का नित्य सदन है
लौकिक प्रदेश नहीं। 'सिद्धान्त-पंचाध्यायी' में कवि कहता है—

श्री वृन्दावन चिदधन, छन छन धन छवि पावै
नन्द-मुवन को नित्य-सदन, भुक्ति-रमृति त्रिहि गावै

• (३९-४०)

'पञ्चपंचाध्यायी' में उसने इस अलौकिकता का विशद
विवरण है—

श्री वृन्दावन चिदधन, कछु छवि बरनि न जाई
कृष्ण ललित लीला के काज, धरि रखौ जड़ताई
जहाँ नग, खग, मृग, तला कुंज, बीरध, तून जेतै
नहि न काल-गुन-प्रभाउ, सदा सोमित रहै तेतै
सकल जन्तु अमिरुद्ध, जहाँ हरि-भृग संग चरहीं
काम, क्रोध, मद, लोभ-रहित लीला अनुसरहीं

सिगुनाम ने महादेव दिया, बहु महाशुद्ध हो मुक्ति को प्राप्त हुआ।
 आरवा, मरवा, मृवा, आरवापन, योग की अप्रत्यांग लापना, सभी
 ठमके मार्ग हैं। गोपियों ने ठाठ्ट काम की लापना द्वारा कृष्ण की
 प्राप्ति की (वि० पं०, २१७-२२८) नन्ददास गोपियों को न शक्ति का
 अवतार कहते हैं, न भुक्तियों का, केवल ठाठ्टा के रूप में वे इनका
 प्रयोग करते हैं—

पाद मनोरथ अननौ, जैसे हरौ भुक्तिगन

(वि० पं० २१२)

यत्रास्मै संरिपतः कृष्णः श्रोभिः शक्त्या समाहित

(अष्टमाध्याय ३, ३, ३)

भुत्यन्तर रुपाणां गोपिकानां

(षोडश प्रप, पृ० १८)

अथर मुधा गोपिकाना सम्बन्धिनी
 बहुवचनेन समुदायरूपा लक्ष्मीरप्येन सूचिता।

(वरी, पृ० १६)

बल्लभाचार्य ने गोपियों को कृष्ण की शक्ति, भुक्तिरूप, समुदायरूपा
 लक्ष्मी कहा है। भागवत में 'गोपजाति' को "प्रतिबुद्ध देवता"
 कहा गया है—

गोपजाति प्रतिबुद्धा देवा गोपालरूपिणः

इंदिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं रूप।

(स्कं० १० अ० १६ श्लो० ११)

नन्ददास इन सब व्याख्याओं से परिचित अवश्य थे, परन्तु उन्होंने
 लक्ष्मी में एकांततः आध्यात्मिकता का आरोप नहीं किया है। इससे
 उन्हें गोपीतरंग की रहस्यात्मक व्याख्या की आवश्यकता नहीं पड़ी।

८—रास

रास की भूमिका शृंगारिक है। कृष्ण आभय हैं, सरद रञ्जनी, चन्द्रमा आदि रसराज के सहायक उद्दीप्त विभाव के अंतर्गत आते हैं। रास में संयोग शृङ्गार ही चित्रित है, परन्तु नन्ददास स्पष्ट कहते हैं—

जे परिहृत सिंगार ग्रंथ मत यामैं छानैं
ते बहुत भेद न जानैं, हरि कौ विपदें मानैं

स्पष्ट है कि उनके मत में पंचाध्यायी (रास) लौकिक संयोग केलि-विलास से भिन्न है। गोपियों के लिए भले ही यह प्रसंग काम-प्रसंग हो, परन्तु साधक भक्तों के लिए अध्यात्मतत्त्व है। कवि कहता ही है—

कृष्ण-नुष्टि करि कर्म करे जो ज्ञान प्रकारा
फल विमिचार न होइ, होइ मुख परम अवारा

(वि० पं०, ६७-६८)

गोपियों का प्रेम ज्ञान के ऊपर प्रेम भी विषय का रूपक है—

ग्यान बिना नहिं मुक्ति, यहै परिहृतगन गावौ
गोपिन अपनी * प्रेमपंथ, न्यारीईं दिखरावौ
ग्यान आत्मा-निष्ठ, गुनत यौ आत्म-गामी
कृष्ण अनाहत परम ब्रह्म, परमात्म स्वामी
नहिंन बहुत सिङ्गारकथा इहि पंचाध्याईं
सुन्दर अति निरवृत्ति-परा तैं इती बड़ाईं
जिन गोपिन कौ प्रेम निरखि मुक भये अनुरागी
ब्रह्मानन्द भगन, ते निकसै छै वैरागी
पुनि तिन की पद-पंकज-रज अन्न अन्नहुं बाँछि
ऊँची बुद्धि विमुद्घन सौ पुनि सो रज इछै
संकर नीके जानत, सारद, नारद गानत
तातैं सदै बगतगुरु, गोपिन गुरु करि मानत

(वि० पं०, ७५-८६)

ब्रह्म में अत्यंत नैष्ठिक स्थापित हो जाता है। रास के इस आध्यात्मिक रहस्य से सुरदास भी परिचित थे। उन्होंने लिखा है—

रास रास रीति नहि भरनि आवै
कहाँ बैठी बुद्धि कहाँ बह मन लहौ,
कहाँ रह चित्त त्रिय भ्रम मुलावै
ओ कहाँ कौन मागे निगम अगम ओ
कृपा बिनु नहि या रहहि पावै

(सुरदासर, स्क० १०, पृ० ३४०, पद ६३)

रास की इस आध्यात्मिकता से नन्ददास भी मली-भाँति परिचित थे। रासराज्याधी का अर्थ करते हुए वे कहते हैं—

नित्य रास रमनीष, नित्य गोपीजनवल्लभ
नित्य निगम यौ कहत, नित्य नव तन अति दुर्लभ
बह अद्भुत रस रास, कहत कछु कहि नहि आवै
सेस सहस मुख गावै, अज हैं अन्त न पावै
सिख मन ही मन प्यावै, काहु नाहि जनावै
सनक सनदन चारद, नारद अति ही भावै
जदपि पद-कमल कमला, अमला, सेवति निशि दिन
यह रस अपने खपने, कबहुँ नहि पायौ तिन
अज अज हैं रज बाँझु, सुन्दर बृंदावन की
सो तनहु नहि पावत सल मिटत नहि मन की
बिन अधिकारी भये, नहिन बृन्दावन सूझै
रेनु कहाँ तैं सूझै, जब लगि वेस्तु न बूझै
निपट निकट श्यौ घट में अंतरजामी आही
विपय-विदूषित इंद्री, पकरि सकै नहि ताही

(५७३—५८६)

यह 'रास' ब्रह्म (कृष्ण) की अम्यतम एकांन लीला है बिउने
 निरूपणमाचार्य ने "कैवल्य" शब्द का प्रयोग किया है (अष्टमाध्याय,
 २-६-१३)। लीला में भाग लेना ही मोक्ष है (या लीला कैवल्यं मोक्षः)
 इति निरूपण पद्धति का कवि की अम्यतम साधना यही होती है—
 यह कृष्ण की लीला को अत्यन्त निकट से देखे। नन्ददास ५
 पद है—

देखी देखी ही नागर नट,
 नितत कालिंदी तट,
 गोपिन के मध्य राखे मुकुट लटक।
 काछिनी किछिनी कटि, पीताम्बर की चटक,
 कुंडल किरन रवि-रथ की झटक।
 ततयेई तातायेई सबद सकल उपट,
 उरप तिरप गति परै पग की पटक।
 रास में राखे राखे, मुरली में एक रट,
 नन्ददास गावै तहँ निरट निकट ॥

यह लीला या रसभाव ही भक्त का अंतिम ध्येय या कर्षोक्ति "लीला
 या एव प्रयोजनत्वात्" (अष्टमाध्याय)। भगवान् और भक्त दो
 दृष्टिकोण से युगल मिलन, रास, लीला—यही अंतिम बाँझा है।

६—कृष्णविरह

नन्ददास के काव्य में कृष्णविरह की सुन्दर व्याख्या हुई है।
 कहते हैं—

कृष्णविरह नहीं विरह प्रेम-उच्छलन कहावे
 निरपट परम मुख-रूप, इतर सब दुख बिसरावे
 गोपियों को गर्व हो गया या कि वे कृष्ण की परम कृपापात्री हैं।
 नन्ददास का कहना है कि शुद्ध प्रेम में गर्व नहीं रहता—

शरणाधिक ले बड़े काम के अंग चाहिं ते
सुद प्रेम के अंग नाहिं, जानहिं प्राकृत ये
कृष्ण को गोपियों के काम-भाव को विरुद्ध निःसीम प्रेम में बदलना
था। इसीसे उन्होंने गोपियों से अंतर्धान होकर उनके गर्व का परिहार
किया। इसके अतिरिक्त गर्व प्रेम-विषयक भाव है। प्रेमी-शिरोमणि
कृष्ण इस प्रकार के भाव को कब सह सकते हैं—

जब जब को उद्गार होइ अति प्रेम-विपुलक
छोड़ छोड़ करि निरोध, गोपकुल-केलि-उत्तमक
नाहिं बहुत इन्द्रियगामी, कामी कामिन के बस
सब घट अंतरात्मा स्वामी परम एकरस
नित्य आत्मानंद, अलंकार रूप उदास
केवल प्रेम मुगम्य, अगम्य अवर परकारा

(वि० पं०, १७३-१७८)

गोपियों ने 'जग उधारन-कारन' (बरी, १८३) शुरू होकर यह प्रेम-
मार्ग दिखलाया। इस प्रकार हम जानते हैं कि 'परम प्रेम' (विरह-
मंजरी, १), उज्ज्वल रस (वि० पं०, १८८८) आदि शब्दों में
नन्ददास ने गोपीप्रेम को सांसारिक प्रेम से अलग करने की चेष्टा की
है। परन्तु उन्होंने अनिवार्यतः इस प्रेम को शृङ्गार-रास पर ही सदा
किया है क्योंकि प्रकार-भेद होने पर भी भूमि एक ही जैसी है। विरह-
मंजरी और रसमंजरी में शृङ्गार-रास को प्रेम-भक्ति का अंग बनाने
का प्रयास हुआ है। विरहमंजरी श्रुतसंहार के टंग पर लिखा बारह-
मासा है, परन्तु साय हो चन्द्रदूत की कल्पना भी मेषदूत के टंग पर
की गई है और एक कथावृत्त भी लिखा किया गया है। प्रबोधा चन्द्र
को दूत बनाकर भेजती है, बारहों महीनों में विरहिणी की व्याधा का
चित्रण है। प्रातः सोकर उठती है तो बंसी की ध्वनि सुनाई पड़ती है।
बछड़ा मिलाने के बहाने दौड़ती है, बाहर पौर पर कृष्ण है जो

('अंतरजामी सबके द्विप के') सब जानते हैं । वास्तव में इस रचना में कवि ब्रज के विरह की व्याख्या करना चाहता है । वह करता है—
ब्रज का प्रेम-विषोग मुलभ नहीं पाता, अन्धे-अन्धे इसमें उलभ ॥
हैं । ब्रज के विरह ४ प्रकार के हैं—

(१) प्रत्यक्ष

(२) पलकांतर

(३) वनांतर

(४) देशांतर

विरह प्रेम की भूमिका है—

जे घट विरह-अशा-अनल, परिपक भये सुभाह

तिन हीं घट में नन्द हो, प्रेम-अमी ठहराह

(वि० मं०, १५)

प्रत्यक्ष विरह राधा का विरह है जो नवनिकुञ्ज-सदन में कृष्ण के साथ विहार कर रही है, परन्तु संयोग में भी विषोग का अनुभव कर कहती है—

मेरे लाल कहाँ री ललिता

इस प्रकार संप्रपन्न मिलन भी विषोग हो जाता है । पलकांतर विरह में प्रेमिका प्रमी को देखना चाहती है, वह सामने है, परन्तु पलकों की बाधा भी उसे सहन नहीं । वनांतर प्रेम गोविंदों का है । कृष्ण वन को गाव चराने आते हैं तो भी गोविंदों को प्रेम के कारण चैन नहीं पड़ता—

नैन, बैन, धन, भवन सब, जाह रहे दिव पाव

तनक प्रात घट रहन है, गिरि आवन की आन

(बरी, ११)

देखांतर विरह में कृष्ण की मधुर, द्वारका आदि की लीलाओं की याद कर उनसे स्मृति में तदाकार स्थापित किया जाता है। बारहमासा इसी विरह का फल है।

रसमंजरी नायक-नायिका-भेद का ग्रन्थ है, परन्तु इसे भी कृष्ण-प्रेम की भूमिका के साथ उपस्थित किया गया है—

नमो नमो आनन्दधन, सुन्दर मन्दकुमार
रसमय, रसकारन, रसिक, जग जाके आधार
है तु बहुत रस हरि संसार, ताकी प्रभु तुम ही आधार
जो अनेक सरिता जल बहे, आनि सब सागर में रहे
जग में कोठ कवि बरनौ काही, जो बस-रस सब तुम्हरी आही
बसो जलनिधि तै जलधर जल ले, बारी, हरिने अपने कर ले
अग्नि तै अलगन दीपक बरै, बहुरि आनि सब तामें रहे
देखै ही रूप प्रेम रस जो है, तुम तै है, तुमही करि सोई
रूप प्रेम आनन्द रस, जो बहुत जग में आदि
सो सब गिरिधर देव जो, निधरक बरनौ ताहि

(रसमंजरी, १—१०)

इस भूमिका के सिवा 'नायिका-भेद' में कृष्ण-कथा का भक्ति का कोई सम्बन्ध उक्त प्रकार स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया गया है, ब्रिता 'उत्कल नीलमण्ड' में। बागवत में, हिन्दी कृष्ण-वाक्य में मोरियों में नायिका-भेद की स्थापना नहीं हुई है—केवल अमिताभिका, लक्ष्मिका का प्रेरित-नायिका ही हैं। परन्तु फिर भी इतने प्रसंग से ही इस स्थापना का सम्पन्न करना कृष्ण-भक्ति के लिए आवश्यक हो जाता था।

पुष्टिमार्ग में कृष्ण परम प्रेममय, परम नायक माने गये हैं। साथ ही प्रेम के आभार होने के कारण वे परम रूपमय भी हैं। रूप-मंजरी में इसी माने नन्ददास करते हैं—

प्रथमहि मनऊँ प्रेममय, परम जोति जो आहि
रूप-उपासन, करानधि, निग कहत कवि ताहि

शोषारिक प्रेम को कृष्ण-प्रेम की ओर ही अभिमुख करना पुष्टिमार्गीय कवि का काम था। अतः रूपमंत्ररी में इस प्रकार की कथा की योजना की गई है (दे० कथा)। इसे ही कवि ने 'परम प्रेममदति' (रूप०, ३) कहा है। इसे वे 'सुन्दरम पद' भी कहते हैं—

ऐने को प्रसु के पङ्कज-पग, कविन अनेक प्रकार बदे मग
तिन में इह इक सुन्दरम रहे, ही तिहि बलि जो इहि बलि चहे
कथा की भूमिका में दर्शन स्पष्ट है—

पुनि मनऊँ परमाठम जोई, पट-पट, विषट पूरि रहौ सोई
ज्यौ बल भरि बहु मावन माही, इन्दु एक खरही में छाँही
जु बहु मानवर सवि को भौई, सो न हृद दिलर छवि पाई
तरनि-किरन सब पाहन परसै, फटिक माँक निब तेजहि दसै.
स्वाति मूँद अहि-मुख बिस होई, कदलीदल कपूर होइ सोई
जुवन रूप सँग सोभा पावै, सो कुरूप दिग बदन दुरावै
एके पट अनेक रँग गहै, सु रँग रँग सँग अति छवि लहै
पुनि जल पवन एकरस आही, बस्तु के मिलत मेद भयो ताही
रविकर परसि अग्नि बिहि होई, सो दरपन बग बिरलौ कोई

जगमग-जगमग करहि नग, औ जराइ सँग होइ
काँच किरन कंचन लखे, भली न कहियै कोइ

(रूप०, ६—१५)

इस कहानी में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि संसार का सब सौंदर्य, प्रेम, ऐश्वर्य भगवान् के भोग के लिए है, मनुष्य के भोग के लिए नहीं। इस प्रकार इंद्रियों को लौकिक वियोगों से हटा कर कृष्णामुख करने की चेष्टा की गई है। यहाँ 'परकीपा', रति की भी व्यवस्था

है। रूपमञ्जरी का प्रेम परकीया का प्रेम है, यद्यपि कृष्ण स्वप्न में ही मिलते हैं, साक्षात् में नहीं। इससे स्पष्ट है कि अतिनिन्दित परकीया प्रेम को वैष्णव भक्तों ने केवल एक मानसिक आध्यात्मिक अवस्था माना है। कहानी का मंतव्य है—

यद्यपि अगन तैं अंगम अति, निगम कहत है जाहि
तदपि रँगिले प्रेम तैं, निपट निकट प्रमु आदि

(रूप० म० ५७७, ५७८)

वार्तव में सूफ़ी सम्प्रदाय की भाँति पुष्टिमार्ग में भी 'विरह की साधना' (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जिसे 'प्रेम की पीर' की साधना लिखा है) की प्रधानता थी। इसी विरह-साधना को विरहमञ्जरी और रूपमञ्जरी की नायिकाओं के धट्ठुतु और बारहमासे से संकेतित किया गया है। इस विरह की साधना को ही प्रेममयि (रासपंचाध्यायी ५८८), परम रस (वही, ५९६), परम कांत एकांत (वही, ५९६) और 'उज्ज्वल रस' (वही, ५९७) कहा गया है। यह स्पष्ट है कि बल्लभकुल के मक कृष्ण के प्रति एकांत-निष्ठ प्रेम को गृह्यार (लौकिक प्रेम) से अलग करने के लिए बराबर शब्द गढ़ते रहे हैं जिससे उसकी अलौकिकता साधारण जनों के मन में पैठ जाये। इतना होने पर भी यदि जन भ्रष्ट हो जायें, तो उनका क्या दोष ? नन्ददास स्पष्ट कहते हैं—

जिन अधिकारी भये, नहि न नृन्दावन एभै
रेतु कहाँ तैं सुभै, अब लगि बस्तुन धूभै
निपट निकट ज्यौ बट में श्रुंतरआमी आही
बिषय-विदूषित इन्द्री, पकरि सके नहि तारी

(वही, ५८३—५८६)

यह रहस्यलीला हीनभट्टा, निन्दक, नास्तिक, हरिधर्मवदिमुंल मनुष्यों

की समझ में आ ही नहीं सकती, यह तो भक्तों के ही लिए है (देखिये रासपञ्चाध्यायी, ५८७—५८६)

इस प्रकार नन्ददास के काव्य में गोपी-प्रेम का विषय विवेचन हो जाता है । सिद्धांत-पञ्चाध्यायी (२१७—२१८) में कवि स्पष्ट कहता है कि उनका प्रेम वासनामय या (काम), परन्तु वही कृष्णोन्मुख होकर निःसीम प्रेम (परम रस) हो जाता है । गोपियाँ कृष्ण के रूप से आसक्त हुई थीं, परन्तु वही रूप-प्रेम उनकी कृष्ण-प्राप्ति का कारण हुआ । मुरली का आह्वान रूप-लोभ को अस्वात्म-रस में परिणत कर देता है । जो गोपियाँ नहीं आ पाती उनका घोर विरह-दुःख उनकी कामनाओं को भस्म कर देता है—

परम दुःख धीकृष्ण-विरह-दुःख व्याप्यौ त्रिनर्मि
कोटि परस लागि नरक-भोग-अथ भुगते क्षिप्त मैं
पुनि रंचक धरि प्यान, पियहि परिरम दियौ खर
कोटि स्वर्ग-मुंख भुगति, क्षीन कीने मंगल खर

(रास० पं०, १२८—१३०)

इस प्रकार कृष्णरस-प्राप्त करने वाली आत्मा का पाप-पुण्य गङ्गल-अमङ्गल सब नष्ट हो जाता है । नन्ददास के अनुसार गोपियों का प्रेम परकीया प्रेम है—

रस मैं जो उपसति-रस आही
रस की अवधि कहत करि ताही

(कामज्योती, ११६)

यह 'परकीया प्रेम' ही पुष्टिमागीय वाचना का अंतिम श्लोक है । रासों और हरिमन्दी दोनों का प्रेम परकीया का प्रेम है, दोनों विशदित हैं (देखिये, रघुसुन्दर-चरित-हरिमन्दी-वाचना)

भी बड़ा है। इसीसे नन्ददास के ग्रंथों में राधा का चित्रण नहीं मिलेगा।

इस प्रकार हम नन्ददास के काव्य में कृष्ण-भक्ति और शृङ्गार का तादात्म्य देखते हैं। अणुभाष्य में बल्लभाचार्य इस भक्ति और शृङ्गार के द्वन्द को स्पष्ट शब्दों में रखते हैं—

वस्तु तस्तु ग्रामर्षिहृष्य सिद्धस्वरूपत्वेऽपि न तादृशं वक्तुं शक्यं
तथा लौकिकपुंषि नाम्ना वा तदाभासौ रसशास्त्रे निरूप्यते दृष्टान्तेन
भगवद्भाववद् भगवद्भक्तरीति भावनार्थे न तृतीय लौकिके तात्पर्यं
भवितुमर्हति (३-३-५७) । परन्तु यह स्पष्ट है कि जब स्वयं
आचार्य रसशास्त्र को नहीं छोड़ सकते तो फिर भक्त कवियों के लिए
शृङ्गार-रसशास्त्र की उपेक्षा करना कहाँ सम्भव था ? मधुरा भक्ति
को कबीर के काव्य में ही हम रसशास्त्र (शृङ्गार) की सहायता से
प्रकाशित होता हुआ पाते हैं। उन्होंने 'राम की बहुरिया' बनकर
अदृष्ट सत्ता के प्रति वियोग और संयोग के गीत गाये हैं। आधुनिक
विद्वान भी इस बात से सहमत हैं कि प्रेम की उच्चतम रिपति का
प्रकाशन प्रेमी-प्रेमिका के रूपक से ही हो सकता है—

“मनुष्यों के सम्बन्धों में सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध दाम्पत्य प्रेम का
है। ईश्वर और मनुष्य का सम्बन्ध इसी ऊँचा और बड़ा-चढ़ा होना
चाहिए। यही शृङ्गारी उपासकों की उपासना का मूल आधार है। जो
सम्बन्ध हमारे ज्ञान के सब उत्तम हो, ईश्वर का सम्बन्ध उससे भी
अधिक उत्तम होना चाहिए। यूरोप के भी ईसाई सम्प्रदाय को मसीह
की स्त्री माना है और दाम्पत्य प्रेम को प्रेम का आदर्श कहा है।
सुलेमान का गीत जो भेड़ गीत कहा जाता है, शृङ्गार की मापा से
परिपूर्ण है। (नवरात पृ० १३६-१३७)

बल्लभाचार्य के समय में ही कृष्ण-कथा में शृङ्गार का मेल हो गया
था। विद्यापति, हरिवंश, हरिदास, तानसेन, सुरदास प्रभृति गायक-भक्त

जगदेव की शृङ्गार भक्ति (मधुरा भक्ति) की परम्परा को तेज़ी से आगे बढ़ा चुके थे । नन्ददास के सांग में पहली बार विद्वान्त के रूप में शृङ्गार और मधुरा भक्ति के तादात्म्य की स्वीकृति है ।

१०—निरोध

ब्रजभाचार्य के अनुसार भागवत निरोध-ग्रन्थ है, इसलिए ब्रजभाचार्य के विद्वान्त की काव्य रूप में समेटने के लिए नन्ददास ने उसका भागानुवाद उपस्थित किया है । उन्होंने भागवत दशमस्कन्ध के कविनाम्न भागानुवाद में पुष्टिमार्ग के विद्वान्तों को एक बार फिर उपस्थित करने की चेष्टा की है । इस दृष्टि से यह अनुवाद महत्वपूर्ण है । उसके अनुसार भागवत दशमस्कन्ध “आभाव वस्तु को रक्षण विन्धु” है । आभाव वस्तु के नव लक्षण हैं (१) सर्ग, (२) विस्मर्ग, (३) स्थान, (४) पोषण, (५) ऊर्ति, (६) मन्वन्तर, (७) वृषण रोषण (८) निरोध, (९) मुक्ति । सर्ग का अर्थ है महदादिक कारण सर्ग की सृष्टि । कारणों से विरव बन्न होता है, इसे ही विस्मर्ग कहते हैं । सूर्यादिक मर्यादा धारण करनेवाले ‘स्थान’ (धान) है—मछ के दोषों के रहते भी आभाव उनकी रक्षा करते हैं, इसे पोषण कहते हैं । साधु-असाधु वाचना वहाँ हो वहाँ ऊर्ति । ‘मन्वन्तर’ समीचीन धर्म की व्याख्या जैसे मुचकुन्द आदि की कथा । निरोध के अर्थ हैं दुष्ट वृषों का अशोष-हरण । मुक्ति का अर्थ है अन्य रूप का त्याग और निज स्वरूप की प्राप्ति । यही आभाव दशमस्कन्ध के रूप में मछों के हित प्रगट हुआ है । दसवें स्कन्ध में भी निरोध है, उसके कई भेद हैं—

(१) दुष्ट रूपदलन (साधारण, इसे सब जानते हैं)
अन्य भेद अद्भुत और असाधारण है—

(२) भक्ति इतर विषे हैं निरोध, उतहि भोक्तुल तैं अवरोध
मुद प्रेममहि प्रापति करै, एक निरोध इहि विधि वित्तदै

क्यों ब्रजवासिन मोक्ष दिखाइ, ब्रह्मानन्द बहुरि ले जाइ
मधुर मूर्ति बिन जब जब अकुलाने, तब फिर बहुरि भी ब्रज ही जानै

(३) अदपि कोटि ब्रह्मांड के कर्ता, अरु तिनके भर्ता-संहर्ता
परम सनेह भक्ति होइ जाके, ईश्वरता कछु कुरै न ताकै
क्यों अमुमति मुख में जग पैख्यौ, सुत ईश्वर करि नाहि न लीख्यौ
ललित बाललीला लपटाती, सौ बह भूतकृपा सी जानी

(४) अब मुनि कृष्ण विप्रेक निरोध

अदपि अनन्त अलङ्कित बोध
सो सब रचक ताहि न कुरै

अब हठि मातस्वन अनुसरे

(५) अबर निरोध-भेद जे आदि

रसलीलन में, लीख्यौ काहि

ऊपर के सिद्धान्तों और बल्लभाचार्य के सिद्धान्तों में कुछ अन्तर
मान पड़ता है। किन्तु नन्ददास ने आश्रय वस्तु के लक्षण कहा है वे
वास्तव में बल्लभाचार्य के दिये भागवत के स्कन्धों के नाम हैं। उन्होंने
दशमस्कन्ध को 'निरोध' विषय का ग्रंथ कहा है। इसके अतिरिक्त
नन्ददास ने जो इन शब्दों की व्याख्या की है, वह भी उनकी अपनी
है। इस भेद का कारण यह है कि उन्होंने दशमस्कन्ध में ही सब कुछ
पा लेने की चेष्टा की है।

बल्लभाचार्य 'निरोध' और 'पुष्टि' को लगभग साम्यवाची शब्द
मानते हैं। पुष्टि के सम्बन्ध में उन्होंने अशुभाष्य में लिखा है—

कृतिवार्त्त वाचनं ज्ञानं भक्तिरूपं शारथेय बोधयेत्। ताम्बा
विदिताम्बा मुक्तिमैर्वादा। तत्रि दितानामपि स्व स्वरूपबलेन स्वमापदं
पुष्टिरित्युच्यते।

(वाचक करते हैं कि ज्ञान से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है और तद्विहित

साधन से भक्ति मिलती है। इन साधनों की प्राप्ति का नाम मर्यादा है। ये साधन सर्वसाध्य नहीं। अतः अपनी ही शक्ति से ब्रह्म जो भक्ति भक्तों को प्रदान करता है, वह पुष्टि कहलाती है। श्री पुत्रादि के विषय में आसक्ति को रोक भगवान् का भक्त (जीव) को स्वास्त्य करना—यही निरोध (रोकना) है। 'निरोध लक्षणम्' में आचार्य लिखते हैं—

हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्ना भवसागरे ।
ये निरुद्धास्त एवात्र मोक्षमायां त्यजन्ति ॥

(भगवान् के द्वारा जो छोड़ दिये गये हैं, ये संसार सागर में डूब गये हैं, और जो निरुद्ध किये गये हैं वे रातदिन आनन्द में लीन हैं।) 'तदाय सर्वस्व' में इसकी व्याख्या करते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखते हैं—

“इस वाक्य से यह दिखाया कि निरुद्ध होना स्वाध्य नहीं है। जिनको वह (ईश्वर) चाहता है निरुद्ध करता है, नहीं तो उसे छोड़ देता है। मनुष्य का बल केवल उस मार्ग पर प्रवृत्त होना है, परन्तु इसमें निराश्रय न होना चाहिए कि जब अंगीकार करना वा न करना उसी के आधीन है, तो हम क्यों प्रयत्न करें। हमारे क्लेश करने पर भी यह अंगीकार करे वा न करे, ऐसी शंका कदापि न करना।” इस 'निरोध'-मार्ग में भक्त की साधना क्या है, यह आचार्य के इस स्थानुक्ति-प्रकाशक उद्धरण से स्पष्ट होगा—

कथं दुःखं यद्योदाया नन्दादीनां च गोकुले ।
गोविन्दानां च यद्दुःखं तद्दुःखं स्वान्मम कथिन् ॥
गोकुले गोविन्दानां च सर्वेषां ब्रह्मचरिणाम् ।
बन्धुनां सममूढान्ये भगवान् किं विधात्विति च
उद्धवागमने चान्ता उक्तवः शुमहान् कथा ।
कुन्दाक्षने गोकुले वा तथा मे मनसि कथयिन् ॥

जो दुःख यशोदा-नन्दादिकों एवं गोपबन्धों को गोकुल में हुआ था, वह दुःख मुझे कब होगा ? गोकुल में गोपीबन्धों एवं सभी ब्रजवासियों को जो मली माँति सुँल हुआ वह सुल भगवान् कब मुझे देंगे ? उद्धव के आने पर जैसे वृन्दावन और गोकुल में महान् उत्सव हुआ था, क्या वैसा मेरे मन में भी होगा ?) इस दुःख-सुख की अनुमति ही निरोध-भाव है, इसी के द्वारा मगवान् भक्त को लौकिक आसक्ति से बचाता है। ऐसा भाव जिसे प्राप्त हुआ, उसे निरोध प्राप्त हुआ। उसे कीर्तन और गुण एवं लीलागान ही करना रह जाता है। सूरदास ने आचार्य के निरोधतत्त्व को पूर्णतः पहचाना था और उन्होंने सूरसागर का टाँचा इसी के विकास के लिए खड़ा किया। नन्ददास ने निरोध की जो व्याख्या दी है—

दुष्ट नृपन को हरन अशेष
साकी बुधवन कहत निरोध

उससे तो यही समझ में आता है कि वे आचार्य के मूल सिद्धान्त से दूर जा पड़े थे। वास्तव में यह युग की विश्लेषण-प्रकृति की कृपा है कि नन्ददास ने 'निरोध' के कई प्रकार कहे हैं। दूसरे अर्थ हैं (१) विषयसुख और मोक्षसुख के स्थान पर शुद्ध प्रेम-सुख की प्रतिष्ठा, (२) भक्त को ईश्वरता का भाव होना भी निरोध है, (३) रासलीला का सौन्दर्य। इन अर्थों में 'मूलार्थ' में स्वीचातानी ही की गई है।

११—साधन

पीछे लिखा जा चुका है कि 'गोपीप्रेम' या 'परकीयाप्रेम' को नन्ददास कृष्ण-प्राप्ति का सर्वोच्च साधन मानते हैं। साधन की भेष्टतम व्याख्या 'मैदरगीत' में है। नन्ददास का मैदरगीत भी सिद्धान्त ग्रन्थ के अन्तर्गत आता है। वह सूरदास के भ्रमरगीत की तरह एक साथ विरह-भाव और ज्ञान पर प्रेम-भक्ति को विजय प्रतिपादित करनेवाला

ग्रन्थ नहीं है। गुरुदास के मंत्ररागीर के तीन पद्य हैं—(१) छाहिलिह—
गोविणों का विमलम, (२) अष्टात्म—मगवान् के प्रति जीवन का
निर्देष्टुक समर्पण, (३) मैदानिह—ज्ञान और योग पर प्रेममार्ग की
विजय। परन्तु गुरुदास का सिद्धान्तवाद भी ठम भेणी का नहीं है किम
भेणी का नन्ददास का सिद्धान्तवाद है। गुरुदास विरहमूलक काम्येत्कारों
के द्वारा प्रेममार्ग की विजय घोषित करते हैं, परन्तु नन्ददास निर्गुण-
सगुण का पंचहा मुक्तभजने में तार्किक दार्शनिक की तरह हल करते
हैं। इस तरह उनका ग्रन्थ शुद्ध मैदानिक ग्रंथ हो जाता है।

इसीलिए ग्रन्थ भूमिदा बिना ऊँचो के उपदेश से ही आरम्भ हो
जाता है। ऊँचो निर्गुणपद्य को उपस्थित करते हैं, गोविणों सगुणरच
को। ऊँचो का निर्गुणपद्य इस प्रकार है—

वे तुम तें नहि दूरि, ग्यान की आलिन देखी
अलिल विश्व भरपूर, ब्रह्म सब रूप बिसैलौ
सौह, दाह, पापान में, अल-यल माहि अकास
सचर, अचर, बरतत सबे, ओति ब्रह्म परकास -

मुनौ ब्रजवाहिनी (३१—३५)

१—बह हृदयरथ ब्रह्म है, और साथ ही

२—विरहव्यापी ब्रह्म है। वे कहाँ नहीं ?

(गोविणों ब्रह्म और ज्ञान को नहीं मानती हैं, वे तो कृष्ण के मोहक
रूप पर मुग्ध हैं और प्रेम का सीधा मार्ग जानती हैं)

३—त्रिय रूप से उन्होंने ब्रजलीला की, वह तो 'सगुन' रू
बास्तव में वे निर्गुन हैं, निर्विकार, निलेंब हैं—

अन्युत ओतिप्रकास है, सकल विश्व की शान

- ४—वे ही अच्युत, लीला-गुन के कारण अवतार धारण करते हैं ।
५—योग ही उनकी प्राप्ति का साधन है ।

गोपियों कहती हैं—

तब ही लौ सब कर्म है, जब लौ हरि उर नाहिं
कर्मरथ सब बिस के, जीव बिमुख हो जाहिं

—सत्ता मुनि स्वाम के (७०)

गोपियाँ कहती हैं—

नेदहु हरि के रूप, स्वास मुख हैं जो निररै
कर्म, क्रिया, आराधक, सबे पिछली मुधि बिसरै
कर्ममय दुर्दै सबे, किनहुँ न पायौ देख
कर्म-रहित ही पाइयै, तारै प्रेम बिसेख

—सत्ता मुनि स्वाम के (११०)

कर्म और अकर्म, पाप-पुण्य सब बंधन हैं, प्रेम के आगे यह बंधन उधर नहीं सकता—

कर्म पाप अरु पुण्य, लोह सोने की बेरी
पाइन बंधन दोड, कोड मानी बहुतेरी
ऊँच कर्म हैं स्वर्ग है, नीच कर्म हैं भोग
प्रेम बिना सब पवि मरे, बिषय-बाधना रोग

—सत्ता मुनि स्वाम के (८०)

गोपियाँ जानती हैं कि सब गुन कृप्य में ही हैं—

जो उनके गुन नाहिं, और गुन भये कहाँ हैं
बीज बिना तब जमै, मोहिं गुन कही कहाँ हैं

वा गुन की परछाँहि री, माया-दर्पन बीच
गुन तैं गुन न्यारे भये, अमल बारि मिलि बीच

—सत्ता मुनि स्वाम के (१००)

गोपियों का प्रेम-दर्शन स्पष्ट है—

खोगी खोतिहि भनै, मक्त निज रूपहि जानै

प्रेमविषूषे प्रगट, स्वाम सुन्दर उरि जानै (८७)

उनके अनुसार मोहन गुन ही वेद-पुराणों का सार है, इसके सिवा कोई आत्मसिद्धि है ही नहीं (२६५—२७०)। निर्गुण का आधार सगुण ही तो है (२७५)।

पुष्टिमार्ग में मर्यादा, ज्ञान और कर्म का बाध है। भगवान् की प्रेमासक्ति (कुल की लज्जा लोपि) ही साध्य है। गोपियों मर्यादा भेद कर ही कृष्ण को पाती हैं। नन्ददास ने हारे हुए उद्धव के मुँह से पुष्टिमार्ग के प्रेमतत्त्व को इस प्रकार कहलाया है—

जे देखें मर्याद मैटि, मोहन की भावै

क्यों नहि परमानन्द, प्रेमस्यदबी को पावै

ग्यान जोग सब कर्म तैं, प्रेम परे है सर्व

हो नहि पटतर देत हो, होरा आगे काँच

विषमता बुद्धि की (३२०)

इस प्रेमासक्ति की प्राप्ति मुख्यतः भगवत्कृपा (पुष्टि) पर अवलम्बित है। परन्तु फिर भी मक्त की आत्मशुद्धि तो बाह्यनीय है ही। बुद्धि का ग्यान का नाश और मन की शुद्धि से ही इस प्रेम की प्राप्ति होती है (२२०)। इसके लिए कुछ साधन भी बंदे गये हैं। वे हैं—
(१) नाम-जप (२) कथितन (३) गुनगान (४) मोती-प्रेम (दिव्य) का आत्मानुभव। अग्य गौड़ साधन हैं, शुद्धमति और

सत्यग (साधु-संग) । ऊपर के चारों साधन क्रमशः उत्तरेत्तर भाव-
विलास के द्योतक हैं । नन्ददास ने एक पद में विट्ठलनाथ द्वारा प्रचारित
भक्तिमार्ग के प्रकारों को इस प्रकार लिखा है—

पुष्टि मर्वादा भजन रस सेवा निजजन पोषण भरणं

नन्ददास प्रभु प्रकट रूप धर भो विट्ठलेश गिरिवर धरणं

इन पुष्टि, मर्वादा, भजन, रस, सेवा के ५ मार्गों में से नन्ददास की
प्रासंगिक रसमार्ग की ओर अधिक थी ।

नन्ददास का पदावली साहित्य (गीति-काव्य)

नन्ददास का पद-साहित्य अपेक्षाकृत कम है। अष्टछाप के कवियों में सबसे अधिक गीति-काव्य सूरदास ने लिखा है, इसके बाद परमानन्ददास, कृष्णदास आदि का नम्बर आता है। फिर नन्ददास हैं। नन्ददास अपने पदों के लिए न प्रसिद्ध हैं, न उनके पद साहित्यिक एवं सांप्रदायिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण हैं। उनका महत्व उनके भैरवीगीत, रासपञ्चाध्यायी, सिद्धांतपञ्चाध्यायी और पञ्चमञ्जरी ग्रंथों के कारण है जो खंडकाव्य या कथात्मक काव्य और सिद्धांत-ग्रंथों की श्रेणी में आते हैं। इन ग्रंथों की काव्य-सम्पदा की विवेचना हमने पिछले अध्याय में की है।

परन्तु नन्ददास के गीतिकाव्य (पदावली) का अध्ययन अन्य दृष्टि से किया जा सकता है। अष्टछाप के कवि अच्छे गायक भी थे और यह गुण नन्ददास में भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। अतः संगीत की दृष्टि से तो वे सफल काव्य के प्रणेता हैं ही, परन्तु हमें उनके पदावली साहित्य के अध्ययन से अष्टछाप की रचनाओं में सूरदास के प्रभाव और विठ्ठलनाथ के सम्प्रदाय-निर्माता के रूप का प्रमाण मिलता है।

सूरदास के पदों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि बल्लभ-कुल (अष्टछाप) के सब कवियों से उनमें सम्प्रदाय की छाप बहुत कम है। इस 'छाप' की कमी का संकेत हमें 'वार्ता' में दिए हुए सूरदास के अंतिम समय के उद्गार से भी मिलता है। जब सूरदास

नन्ददास का पदावली-साहित्य (गीतिकाव्य)

१४५

रसौली में मृत्सुशय्या पर ये तो कृष्णदास ने उनसे प्रश्न किया है कि उन्होंने गुरु की प्रशंसा में कुछ क्यों न कहा ? इसके उत्तर में रूदास ने अपनी सारी रचना को ही गुरु-प्रसाद बतलाया और यह द गया—

भरोसो इदु इन चरनन केरो

भीवल्लभ नखचन्द्र छटा दिन सब जग माँझ अँधेरो

साधन और नहीं या कलि में जासो होत निबेरो

एर कहा कहे दुखि अँधेरो बिना मोल को चेरो

ए पद को छोड़कर एर ने गुरु-वंदना के नाम पर बहुत कम, प्रायः नहीं ही, कहा है। बिट्टलनाथ के समय में गुरु की मान्यता बढ़ी। नन्ददास बिट्टलनाथ की पीढ़ी में थे, रूदास बल्लभाचार्य की पीढ़ी में—उनसे एक पीढ़ी बढ़े। अतः रूदास के साहित्य में बिट्टलनाथ की “छछपाप” की पुष्ट्याप कुछ भी नहीं मिलती। नन्ददास ने तो कितने ही पदों में गुरुवन्दना की है जैसे—

प्रातः समं भीवल्लभ-सुग को उठतहि रचना लीये नाम

आनंदबारी, मंगलकारी, अमुमहरन जन पूरन काम

हरलोक परलोक के बन्धु, को कहि सके विहारे गुन-ग्राम

‘नन्ददास’ प्रभु रसिकविरोमनि, राख करी गोकुल गुलधाम

गुरु-शिरा, समुदाय के आदि प्रवर्तक, भीवल्लभ के लिए भी उनके लिए इससे कम भद्रा नहीं है, कितनी राम के लिए तुलसी के हृदय में है। वे तुलसी की ही श्लोक-शैली में करते हैं—

अवति कविमनीनाथ, पद्मावतिपति, विप्रकुल-द्वज, आनन्दबारी
दीप-वल्लभ-वंत, जगत निरुपम करन, कोटि उदुरात्र सम तारहारी
अवति भक्तिपति, पठितपावन-वरन, कामीजन कामना पूर्णकारी
मुक्ति-कोटीव-जन, भक्तिदाहक प्रभू, सबल सारंग गुनगनन भारी
अवति सकल तीरथ कसै, नाम मुनिरन भाष, बाग बग निरख गोकुल विहारी

‘नन्ददास’ नाम पिता गिरिधर आदि, प्रगट अवतार गिरितन्त्रधारी
(२८४-२८८)

विठ्ठलनाथ के समय में यह गुहमान्यता इतनी तीव्र थी कि गुह को
‘कृष्ण’ का स्थान मिल रहा था। जन्म, बचपन, पालना, शिबोला,
माल-लीला—वल्लभ और उनके पुत्र कृष्ण के स्थान में रख लिये
गये थे और रचनाएँ हो रही थीं। इसी प्रकार जागरण, शयन आदि
नित्यवाचारों में वल्लभ और विठ्ठल-भक्ति का आरोपण था जैसे—

प्रातः समय भोवल्लभ-मुक्त को पुण्य पवित्र विमल यश गाऊँ
मुन्दर मुमग बदन गिरिधर को निरसि-निरसि दग-दगन सिराऊँ
मोहन मधुर बचन भीमुख के भवण मुनि-मुनि हृदय बसाऊँ
तन-भन-प्राण निवेदि वेद विधि यह अनुनयो हो मुमल कराऊँ
रहौ सदा चरणन के आगे महाप्रसाद उन्मिष्ट पाऊँ
नन्ददास यह मांगत हो भोवल्लभकुल को दास कहाऊँ

लक्ष्मण पर आज बाजत बघाई

पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम भोवल्लभ मुखदाई
नाचत तरुण नृप और बालक उर आनन्द समाई
जय जय यश बन्दीजन बोलत विप्रन बेद पढ़ाई
हरद दूब अक्षत दधि कुंकुम आंगन बीच मचाई
बंदनमाला भालिन बाँधत मोठिन चौकु पुराई
फूले द्विज बरदान देत हैं पट मूषण परराई
मिट गये द्रव्य नन्ददास के मनबांझित कल पाई

गुहभक्ति के उदाहरण के तो अनेक पद मिलते हैं, जैसे—

भोविठ्ठल मंगल-रूप-निधान

कोटि अमृतसम हँस गुरु बोलन सबके जीवनप्राण

भबो भो वल्लभमुक्त के चरण-

नन्दकुमार भजन गुलदायक पतितन पावन करण

दूरि किये कलि कपट भेद निधि मत प्रचंड विस्तरण

अति प्रताप महिमा समाज यश शोकनाप मयहरण
पुष्टि मर्वादा मजन रस सेवा निज जन पोषण भरण
नन्ददास प्रभु प्रकट रूप भर ओविट्टलेश गिरिवर धरण

पुष्टिमार्ग में यमुना का बहुत महत्व है। वल्लभाचार्य और विट्टलेश दोनों ने यमुनाष्टक लिखे हैं। उनके अनुसार यमुना

१—भीकृष्ण की प्रीति को बढ़ानेवाली है

(मुकुन्दरतिवर्दिनी २)

२—भीकृष्ण की चौथी पटरानी है

(कृष्णतुर्प प्रियाम् १)

३—कृष्ण-रूप है

(अनंत गुण भूषिते शिवविरंचि देवछूते

घनाघननिभे उदा प्रभ पराचराभीष्टदे

विशुद्ध मधुरासटे सकल गोपगोपी कृते

कृपात्रलाधि संभिते मममनः सुख भावयः । ४

कृष्ण के सब गुण यमुना में संस्फारित हैं)

४—यह हरि को प्रिय है

(प्रियो भवति सेवनाद्यद्दरेर्दगा गोविन्दः ६)

५—भीकृष्ण की बलकेल के कारण धन्य है

(सकल गोविन्दा संगम स्मरभम बलाशुभिः सकलमात्रैः संगमः)

नन्ददास और अन्य पुष्टिमागीर कवियों की कविता में भी यमुना-
दर्शन और यमुना-भक्ति के सुन्दर पद मिलते, जैसे—

१. भक्त पर कर कृपा यमुना देखी .

छाँदि निज भाम विभाम भूतल कियो प्रकट लीला दित्ताई ओ तैव
परम परमार्थ कारण हे पवन को रूप अद्भुत देत आन जैव
नन्ददास ओ जानि हृद चरण गहै एक रचना कहा कहूँ वैव

२. नेह कारण यमुना प्रथम आई

भक्त की चित्त-वृत्ति सब जानही ताहि तैं अति ही आतुर ओ आई

३. यमुने यमुने यमुने गावो

योग छहस मुख गावत निशिदिन पार नही पावत ताहि पावो

४. भाग्य सौभाग्य यमुना ओ दे री

बात लौकिक तेज पुष्टि यमुना भजे लाल गिरिधर को ताहि घर मिले री
मगवरी सब करि बात उनकी हो सरा साभिष्य रहे केलि मैं री
'नन्ददास' को चाहि बल्लभ-कृपा करे ताके यमुना सरा बस ओ रहे री
विठ्ठलनाथ के समय में उसकी आदि के मनाये जाने की बात बनो—
इसके लिए नैमित्तिक कीर्तन गाये जाने लगे। ऐसे कई उत्सवों में
सामन्वित पर हमें नन्ददास की नामछाप से मिलते हैं। रग है, पर पर
नैमित्तिक कीर्तनों के लिए ही बनाये गये हैं। तिन उत्सवों के सामन्व
में ये पर हैं, ये हैं—१ अक्षयदुर्गा, २ मनमोद, ३ रमबाबा, ४ रपा-
बचन, ५ बाग, होली, बाबा, ६ दिवाली, पूनहोल, पड़ा, ७ राग।
इनके अनिर्दिष्ट कृष्ण के प्रथम और बागविवाह से सम्बन्धित अनेक
पद गाये गये हैं, जैसे—अमोलन के पद, इत अमोलन पर बधाई, हाड़ी
के पद, पालन आदि के पद गाये जाते थे। हाड़ी के पद गुरुदास में
भी है और नन्ददास उसी से प्रभावित हुए हैं। वास्तव में अनेक
कृष्ण प्रभ के इन आचार-विचारों के साथ निरपेक्ष और में दिते मिले
लौकिक कृष्ण प्रतिष्ठित हो चुके थे। ऐसे नैमित्तिक कीर्तनों के समय
गाये जानेवाले वरी के कुछ उदाहरण देकर हम इन प्रसङ्ग को जाने
बढ़ावेंगे।

अक्षयतृतीया

चंदन पहर नाव हरि बैठे संग वृषभान दुलारी हो
 यमुना पुलिन शोभित तहाँ खेलत लाल बिहारी हो
 विविध पवन बहत सुखदायक सीतल मंद मुगंध हो
 कमल प्रकाश कुसुम बहु फूले जहाँ राजत नंदनंद हो
 अक्षयतृतीया अक्षयलीला संग राधिका प्यारी हो
 करत बिहार सब खली छौं नन्ददास बलिहारी हो

गनगोर

छुडीली राधे पूब लेनी गनगोर

ललिता विद्यासा सब मिलि निकसी आई वृषभान की पौर
 सपन कुज गहनर बन नीको मिल्यो नन्दकिशोर
 नन्ददास प्रभु आये अचानक घेर लियो चहुँ ओर

रथयात्रा

देखो माई नंदनंदन रथ ही बिराजे

संग सोहे वृषभान - नंदनी देखत मन्मथ लाजे
 मजबन सब मिलि रथ खँचत है सोमा अद्भुत छावे
 सीतल भोग घर करत आरती नन्ददास गुण गावे

रत्नावंधन

रानी नंदलाल कर सोहे

पंचरंग पाट के फुँदना राजत, देखत मन्मथ मोहे
 आभूषन हीरा के पहिरे लाल पाट के पोहे
 'नन्ददास' भारत तन-मन-धन गिरिधर भीमुख जोहे

फाग, होली

आज हरि खेलन फाग बनी

इत गोरी रोरी मर गोरी उठ गोकुल को घनी

चोवा को दोवा कर राख्यो केसर कीच बनो
 नन्ददास प्रभु संग होरी खेलत मुरमुर बात अनी
 राधा बनी रंगमरी होरी खेले अपने प्रीतम के संग ॥ देख ॥
 × × काहू पे अरगजा रंग को काहू पे केसर को रंग ॥
 कोउ गोरी भृगमद लिये होत अमर बहाँ पंग ॥
 तिनमें मुकुटमनि लाडिली सोहत अति मुकुमार ॥
 लटक चलत पशों पवन तें कोमल कञ्चन डार ॥
 पिय कर पिचकारी देख के प्रिय नयना छवि सो दराय ॥
 खंजन से मानो उड़हि चलेंगे दरक मोन बदे जाय ॥
 करत पिय जब वियन को जो मन उपजे आनंद ॥
 मानो इन्दु मुधाकर सींचत ओ कुमुदिन को वृन्द ॥
 भीजे बसन तनतन लपटाने भरनत बरन्यो न आप ॥
 उपमा देन न देत नयन राखे हाहा लाय ॥
 रंगरंगीली राधिका रंगरंगीलो पीय ॥
 यह रंगभीने नित्य बसो नन्ददास के हीय ॥

फूलदोल

डोल मुलायत सब ब्रजमुन्दरी भूलत मदनगोपाल
 गावत पाग धमार हरल मर हलधर ओर सब ग्वाल
 मूलै कमल केतकी कुंभो गुंभत मधुर रसाल
 बंदन बंदन चोवा द्विरक्त उड़त अवीर गुलाल
 बाप्रत बेणु बिपाय बाँसुरी बफ मुदंग ओर लाल
 नन्ददास प्रभु के संग विलसत पुण्यपुंज ब्रजबाल

हिंदोल

माई फूलन को हिंदोरो बन्यो फूल रही बसुना
 फूलन के लग्ने दोउ फूलन की बाँदी चार

फूलन की चौकी बनी हीरा जगमगना
फूले अति बंसीवट फूले है यमुना तट
सब सखी मिलि गावें मन भयो मगना
फूल सखी चहुँ ओरें थोरें थोरें
नन्ददास फूले जहाँ मन भयो मगना

इन उत्सवों के अतिरिक्त नित्य-सेवा में कृष्णलीला के पद बराबर गाये जाते थे, जैसे मंगला के समय दान, पनघटलीला और खंडिता के पद; ग्वाल के समय बालकृष्ण की शोभा के पद; राजभोग के समय बनविहार और क्लेष्ट के पद। नन्ददास के काव्य में इन विषयों पर कितने ही पद मिलते हैं, परन्तु उन्होंने सूरदास की भाँति सम्बद्ध रूप से दानलीला, पनघटलीला और खंडिता आदि प्रसंगों पर रचनाएँ नहीं कीं। कीर्तन करने का काम पहले कृष्णदास को सौंपा गया था, फिर सूरदास को। जब सूरदास कहीं चले जाते थे, तो नन्ददास को कीर्तन का भार सौंप जाते थे। यह फुटकर प्रसंगात्मक पद इसी प्रकार रचे गये होंगे। उनमें न उतना चमत्कार है जितना सूर के पदों में, न उतना लीला-रस। परन्तु कुछ ऐसे विषयों पर भी नन्ददास के पद मिलते हैं जो साधारणतः सूर में नहीं मिलते। बल्लभकुल में राधा-कृष्ण की नित्य परिणीता है, परकीया नहीं, अतः उनका लग्नोत्सव और विवाहोत्सव भी मान्य है। इसीसे हम नन्ददास के काव्य में ऐसे गीत पाते हैं, जैसे—

१. सजनी उर आनन्द न समाऊँ

बरसाने इपमान लगन लिखि पठई है नन्द गाऊँ
धौरी धूमरी धेनु विविध रंग शोभित ठाऊँ ठाऊँ
भूषण मणिमय पार नाहिं ते सो धन देख जुमाऊँ
नन्ददास लाल गिरिधर की हुलहिन पर बलि छाऊँ

२. दूल्हा गिरिधर लाल छुबीलो दुलहिन राधा गोरी वू
 जिन देखत मन में बिय लाबत ऐसी बनी है बोरी
 रत्नजटित को बन्यो सेहारो उर भोतिन की माला
 देखत बदन श्यामसुन्दर को मोहि रही ब्रजवाला
 मदनमोहन राजत घोरा पर और बराती संग
 बाजत टोल दमाम चहुँ दिशि ताल मृदंग उपंग
 जाय जुरे कृपभान की पौरी उत ते सब मिल आए
 टीको करि आरती उतारी मंडप में पघराए
 पढ़त वेद चहुँ दिश विप्रजन भये सबन मन भाए
 हयलेवा करि हरि राधा हो मङ्गलचार पढ़ाए
 ब्याह भयो मोहन को जवहीं यशुमति देत बधाई
 चिरजीयो भूतल यह बोरी नन्ददास बलि आई

इनमें राधा-कृष्ण के दुलहा-दुलही रूप का वर्णन है। जब हम
 हैं कि सूरसागर में स्पष्टतः कृष्ण-राधा के विवाह की कथा गाई
 है, तो पुष्टिमाग और परवर्ती काव्य पर सूर के प्रभाव को
 सकते हैं।

नन्ददास के पदों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है
 उन्होंने कृष्ण-कथा को उस प्रकार कथात्मक भोति-काव्य के रूप
 नहीं लिखा, जिस प्रकार सूरदास ने लिखा है। वे दशमस्कन्ध में
 प्रकार की कथा भागवत के आधार पर कह चुके थे। जैसा हम अन्य
 बता चुके हैं उनमें नवीन कथावृत्ति की मौलिकता भी नहीं थी। अतः
 उन्होंने न कृष्ण-कथा को कथारूप में लिखा, न कथा के सब प्रसंगों
 पर गीत गाये। अलौकिक प्रसंगों में केवल मोहर्द्धनलीला पर ही एक
 पद मिलने हैं—

कान्हू कुँवर के कर पल्लव पर मानो मोहर्द्धन राख करै
 क्यों क्यों तान उठत मुरली की क्यों क्यों लालन अघर धरै

मेघ मृदंगी मृदंग बधावत दामिनि दमक मानो दीप जरे
ग्वाल ताल दे नीके गावत गायन के संग सुर जो भरे
देत असीस सकल गोपीजन बरखा को जल अमित भरै
अति अद्भुत अवसर गिरिघर को नन्ददास के दुःख हरै

राजे गिरिराज आब ग.य गोप जाके तर
नेक सी बानिक बने प्रेरे मेख नटवर
लियो हे उठाय ब्रजराय के कुंवर कर
अरग धरग राख्यो मुरली की पूँक पर
' भरसे प्रलय के पानी न जात काहुँ पै बखानी
ब्रजहु ते अति भारी दूटत है तर तर
तापर के खगभृग चातक चकोर मोर
बूँद न काहुँ के लागि भयो हे कौतुक भर
प्रभु जू की प्रभुताई इंद्रहु की जड़ताई
मुनि हँसे हेर हेर हरि हँसे हर हर
नन्ददास प्रभु गिरिधारी जू की हाँसी खेल
इंद्र को गर्व गयो भये हे दूर पर

परन्तु अधिकांश पद उन्हीं प्रसंगों पर हैं जो या तो सम्प्रदाय के नित्य और नैमित्तिक कीर्तन के लिए मान्य थे, या जिनमें काव्यरस की दृष्टि से नन्ददास की गृह्यारिक रुचि रुचि ले सकती थी। दूसरे प्रकार के कई प्रसंग हैं—पनपटलीला, दानलीला, रास, पाग, खंडिता, मान और मानमोचन। जिन साम्प्रदायिक प्रसंगों का सम्बन्ध उपरोक्त विषयों से है जैसे दिंडीला, फुलडोल आदि, वे भी अच्छे बन पड़े हैं।

नन्ददास ने बाललीला पर बहुत कम पद लिखे हैं, यद्यपि उनका एकान्तः अभाव नहीं है। इन रचनाओं पर भी सूरदास का प्रभाव

कबहुँक पलना मेलि मुलावति, कबहुँक अस्तन पान करावति
'नन्ददास' प्रभु गिरिधर कौ रानी निरखि निरखि मुख पावति
सूर के इस पद से तुलना कीजिये—

अमुमति लै पलिका पौढ़ावति

मेरी आज अतिहि विक्रमानी यह कहि मधुरे मुर गावति
पौढ़ि गई तब हरखे करिके अंग मोरि तब हरि अमुदाने
कर सौ ठोकि मुतहि हुलरावति चटपटाइ अतुराने

नन्ददास ने बन से लौटते हुए कृष्ण का चित्र इस प्रकार उपरिधत किया है—

बन तैं आवत गावत गौरी

हाथ लकुट गैयन के पाले दोटा अमुमति की री
मुरली अघर धरे नन्दनन्दन, मानौ लगी ठगौरी
पाही तैं कुलकानि हरी है, ओढ़े पीत पिछौरी

सूरदास लिखते हैं—

हरि आवत गाइन पाले

मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल नयन विमल कमलतैं आछे
मुरली अघर धरन सीखत हैं बनमाला पीताम्बर काछे
बाल-बाल सब बरन-बरन के कोटि मदन के छवि कियौ पाछे

इन उद्धरणों के बाद नन्ददास की पदावली पर सूरदास के प्रभाव के सम्बन्ध में ज़रा भी सन्देह नहीं रह सकता । अन्त में हम सूर की शैली से मिलती हुई नन्ददास की दो रचनाएँ उद्धृत करते हैं—

१—सुन्दर श्याम पालने भूले

अमुमति माय निकट अति बेटी निरखि-निरखि मन फूले
मुकुटा लेके बनावत रुखि सौ लाल ही के अनुहूले

पीक भलकन सौहैं सरस्वती देनी
परम पावन देखि मदन प्रियेनी

(राधा का रूप वर्णन दूती के मुख से—विद्यापति की इस प्रकार की रचनाओं से भी तुलना कीजिये)

द्वि-भी अधिकांश पदों में न कला का वह रूप निखरता है, न माया का, जो भैरवगीत, रासपञ्चाव्यायी आदि प्रौढ़ रचनाओं की विशेषता है। ज्ञान पड़ता है, नन्ददास ने अधिक पद दीक्षाकाल के कुछ बाद ही लिखे हैं। उनमें सुरदास की गुरु-छाप पग-पग पर दिसलाई पड़ती है। कुछ तो उनकी भाषा में तत्सम शब्दों का उतना प्रयोग नहीं जितना सुर के पदों की भाषा में, कुछ उनका प्रारम्भिक अभ्यास काल—ये रचनाएँ सुर के काव्य से परिचित व्यक्ति को कुछ अपपटी लगती हैं। यही नहीं, स्वयं नन्ददास के प्रौढ़तम काव्य से परिचित पाठक उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखेगा।

नन्ददास के पद-काव्य में त्रिद्वय के पदों का नितांत अभाव है परन्तु भी नन्ददास के सिद्धान्त से परिचित हैं वे जानते हैं कि देशान्तर विरह (प्रवास) उन्हें मान्य ही नहीं है, वनांतर विरह में हर नी लीय वेदना नहीं हो सकती, जितनी मधुरा-ममन में। पलकांतर विरह को अवर्य स्थान मिला है जैसे—

देखन देत न बैरिन पलकें

निरखत बदन लाल गिरिधर को बीच परत मानो वग्न की ललकें
बन तें तु आगत वेरु बजावत मोरम मंडित रावन जलकें
माये मुहुट भवण मणि कुंदल ललित कपोलन भौंई मजकें
ऐसे दुल देखन को सखनी कहा कियो यह पुत कमल के
'नन्ददास' सब बदन की यह गति मीन मरत भावें नहि जल के

नन्ददास की भक्ति

भक्ति का अर्थ है शुद्धात्मक, भावुकतामय, विरोध व्यक्तित्व के प्रति आत्मसमर्पण। यह एक धार्मिक एवं आध्यात्मिक स्थिति है। ऋग्वेद के साहित्य में ही इम इन्द्र, वरुण, प्रजापति इत्यादि देवताओं के प्रति भक्ति के चिह्न पाते हैं। परन्तु उपनिषदों में भक्ति का ध्यान आत्म-चित्तन और उपासना (गुरु के पास रहकर साधना) ने ले लिया। उस समय से भक्ति के दो रूप हो गये, एक आत्म-चित्तन-मूलक ज्ञान-कर्मकाण्ड-प्रधान, दूसरा भावुकतामय।

ज्ञान पड़ता है भक्ति के जिस रूप से आज हम परिचित हैं, वह बौद्धकाल की वस्तु है। धीरे-धीरे बुद्ध का मानवीय व्यक्तित्व तोप हो गया, और उनके प्रति प्रेमभाव ने भक्ति की बलवती भावना को और भी विकसित किया। महायान में इस भक्ति का पूरा विकास हुआ। बौद्ध मंदिरों और विहारों में बुद्धों, अवलोकितेश्वर और वज्रसत्त्व की मूर्तियाँ स्थापित की गईं, और गीत और गान के साथ उनकी नित्य पूजा चली। यह महायान जब धीरे-धीरे हिन्दू धर्म के सामने पराजित हुआ, तो वह पहले अपनी अनेक संस्थाओं का प्रभाव हिन्दू मतवाद पर छोड़ चुका था। भक्ति की संस्था भी इनमें एक है।

ऐसवी शतাব्दी दो में वैष्णव धर्म का पुनरुत्थान हुआ उस समय गुप्त राजाओं ने 'महावैष्णव' की उपाधि धारण की। विष्णु विशेष पूजित हुए। उनके मन्दिर भी स्थापित हुए। परन्तु शिव, ब्रह्मा आदिकेय, सूर्य आदि अनेक देवी-देवता भी इसी समय जनता के अनेक

भारत में विशेष रूप से हुआ, परन्तु बाद की विष्णु भक्ति दक्षिण में ही विशेष विकास को प्राप्त हुई। १०वीं शताब्दी में वैष्णव भक्ति फिर उत्तर भारत में आई। दक्षिण के छलवार भक्तों से प्रभावित आचार्य उत्तर भारत के मध्ययुग की भक्ति के आदि प्रवर्तक हुए। परन्तु इस सारे काल में वैष्णव-भक्ति का उत्तर भारत में भी काफी महत्व था। यद्यपि शक्ति-भक्ति और शक्ति-भक्ति का ही प्रभाव दे रहा था। बंगाल शाक्त था। राजपूतों का पश्चिम और मध्यभारत में प्राधान्य था, वे शिव के उपासक थे। कुछ राजपूतों में भवानो (शक्ति) की सेवा चल रही थी। बंगाल में महाशान की उच्चाधिकारिणी अनेक देवियों की पूजा-भक्ति चल रही थी।

मुसलमानों ने आने से दो शताब्दियों पहले से भक्ति के एक नये रूप की प्रतिष्ठा हो गई थी। इसका आधार था विष्णु के अवतार राम और कृष्ण। दोनों की भक्ति में अन्तर था—एक में सेवक-सेवा भाव की प्रबलता थी, दूसरी में माधुर्य भाव की। इन दो भक्ति शास्त्रों का प्रवर्तन दो संस्कृत ग्रन्थों से हुआ। राम भक्ति अध्यात्म रामायण से, कृष्ण-भक्त माधवत से। परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि ये ग्रन्थ पूर्ण विकसित रूप में प्राप्त हुए। १ली शताब्दी से १०वीं शताब्दी तक के पुराण और काव्य रामकृष्ण-कथा को विकसित कर चुके थे और इन्हें विष्णु के भेष्ठतम अवतारों के रूप में उपास्य माना जा चुका था। परन्तु १०वीं शताब्दी तक के रामकृष्ण-ग्रन्थों में संस्कृत साहित्य में यह स्पष्ट हो जाता है कि तब तक जनता में इन अवतारों के प्रायः वह प्रगाढ़ भक्तिभावना नहीं उत्पन्न हुई थी जो बाद में प्रकटित हुई। संस्कृत में कृष्णकाव्य पर सामग्री केवल पौराणिक कथाओं के रूप में मिलती है, महाभारत और भाग के कुछ नाटकों में अवश्य कृष्णलीला को विषय बनाया गया है। राम-सम्बन्धी साहित्य प्रचुर है—रूप-वैभिन्न्य और भाषा दोनों में। महाकाव्य, गद्यकाव्य, चंपू, नाटक, इन सभी साहित्यिक रूपों में राम-सम्बन्धी

की प्रतीति है, यह हम नहीं कह सकते। परन्तु उन्होंने कभी भी मोक्षो के भाव का उल्लानगुण श्रुत्यादि वर्णन नहीं किया। उन्हें 'मूर्ति' या 'अवतार' 'गमासोद-कता लक्ष्मी' कहकर उनके काम-भाव का परिहास ही किया है। इससे भी बड़ी समझ पहचान है कि वे मधुर भक्ति का पोंगू नहीं थे, यद्यपि चैतन्य के मित्र होने के नाते उनके स्वस्व और साहित्य से व विशेष रूप से परिचित रहे होंगे। उन्होंने बराबर का मुन्वि माय 'पुष्टि' होना चाहिए। वह जाने को मगवान की कृपा पर डाल दे, वही उसका योग्य करेंगे, उसके भक्ति-भाव को बढ़ा करेंगे, और अनायास ही पवित्र विगत कर उस मगगागर से हारेंगे। बाद की सम्प्रदाय में किन-किन प्रभावों के कारण श्रुतार्थिक की प्रधानता हो गई, यद्यपि दूबोरवार बालकृष्ण का ही चलता रहा, यह हम अन्यत्र समझा चुके हैं।

इस प्रकार नन्ददास जब सम्प्रदाय में दीक्षित हुए तो उसमें भक्ति के तीन रूप प्रतिष्ठित थे—

(१) वात्सल्य

(२) लस्य

(३) मधुर या रति

नन्ददास का जीवन वृत्तान्त से यह स्पष्ट है कि उनमें रसिकता की मात्रा विशेष थी। वे बालक के हावभाव पर रीझनेवाले पुरुष नहीं थे, उनकी सहृदयता श्रृङ्गार वर्णन में ही उमड़ता था। वे पहले दास्य भाव के भक्त थे, परन्तु उनका मन इस प्रकार की भक्ति में नहीं लगता था, वे तब भी नाटक-प्रदर्श देखते थे। वे यात्रा के ढंग के स्वागत-मैदुए रहे होंगे। इससे वात्सल्यरस की भक्ति की अधिक रचनाएँ उनके साहित्य में नहीं मिलती। वे सुन्दर के शिष्य थे। इस नाते, कुछ सम्प्रदाय की बाल-भक्ति के अनुरोध से कुछ सुन्दर पद अवश्य होने लगे—

आज सिंगार श्यामसुन्दर को देखे ही बनि आवे
 श्याम पाग अरु स्वत चोलना छूटें मद मुहावे
 मोतिन माल हार उर ऊपर, कर मुरली जु बजावे
 'नन्ददास' प्रभु रविक कुंवर को लै उलंग हुलरावे
 यहाँ भी बालकृष्ण "प्रभु रविकुंवर" ही है, 'नवनीतप्रिय' नहीं।
 एक पद है—

छगन मगन घारे कन्दैया नैकु उरे धो आउ रे लाला
 बन में खेलन आत लाल हरे रहे सब मलीन गात
 अपने लाल को लेहुँ बलाय रे लाला
 संग के लरिआ सब पनि टनि आवे यो कहैगे
 केभी हे तेरी माय रे लाला
 यशोदा गहत पाय रेवाँ मोहन कृत म्हेवाँ म्हेवाँ
 नन्ददास बलि जाय रे लाला

एक दूसरे पद में उनका बालकृष्ण (नन्दसुवन) में भक्ति-भाव स्पष्ट
 रूप में प्रकट है—

नन्दभवन को भूषण साई

यशोदा को लाल कीर हलधर को राधारवन मुलसाई
 हृद को हृद देव देवन को ब्रह्म को ब्रह्म अधिक अधिकारी
 काल को काल ईश ईश्वर को वरुण को वरुण महाबहादुर
 शिव को धने संतन को सर्वेश महिमा वेद पुष्पासन साई
 नन्ददास को जीवन निरिधर गोकुलमदन कुंवर कन्होई
 एक आश्रय शीत में ये बालकृष्ण भी श्रीहानूमि के नाते ही नन्ददास में
 रचना चाहते हैं—

नन्द नाम नीकी लागत ही

मात्र लभे हरि मयत श्यामिनी मुनन मधुर भनि गुणन ही
 भय बोरी भय भाल जिनके मोहन उर लागत ही
 हलधर संग, श्याम लब राखन निरिधर ले ले हरि मागत ही

जहाँ वनन गुह्येन महामुनि एको वन नहीं त्यागन ही
 नन्ददास को यह कृपादल गिरिधर देने मन लागन ही
 परम सुख कब से नन्ददास मधुर-मन्त्रि को ही लखना बनाकर
 है यद्यपि प्रकाश जगह मज्ज-मन्त्रि भी मिल सकनी है वैने—

माई री प्रातःकाल नन्ददास पाग बैषाव
 बाल दिग्बाधन दर्पण माल रखो लखि
 सुन्दर नय करन बीच मंडु मुकुर की छवि रही कवि
 मानो गई आप्यो है मुग कमलन शशि
 बिज बिज चित के जोर मोरचन्द्र माये दिए
 तिन दिग रत्नयेन बोधत है कव
 नन्ददास ललितादिक छोट मये
 अवलोकित अनुलित छवि कहि न जात फूल भरे ईश

वास्तव में सख्य-मन्त्रि और मधुर-मन्त्रि में विशेष अन्तर नहीं था
 सख्य-मन्त्रि में भक्त कृष्ण का सखा बन जाता था, और इस प्रकार
 अपने सख्य-भाव के कारण कृष्ण की गोप्य से गोप्य लीलाओं में भा
 लेता था। कृष्ण की ये लीलाएँ उनका राधा और गोपियों से शृंगारि
 हासविलास, काँदा, केलि, आसिंगन-परिरंभन-चुबन-रति आदि हैं
 हैं। इनमें भाग लेने के अधिकारी या तो ललितादि राधा की सखियाँ
 या 'अष्टसखा' हैं। हम जानते हैं कि प्रत्येक अष्टसखा का एक
 कृष्णसखा से तादात्म्य कर दिया गया है। भी द्वारकानाथजी
 का छण्य है—

सूरदास सो तो कृष्ण ताको परमानन्द जानो
 कृष्णदास सो श्रुपय छीतस्वामी सुबल बखानो
 अर्जुन कुम्भनदास, चक्रभुवदास विशाल
 विष्णुदास सो भोजस्वामी गोविन्द भीदामा लाल

कामिहि नारि पिबारि जिमि × × प्रिय लागो मोहि राम

(उत्तरकांड)

दैन्यभाव ही अधिकता के कारण उनकी भक्ति अध्यात्मिक है। वह भद्रात्मक है, दैन्यात्मक है, रागात्मक नहीं।

बल्लभाचार्य के मत में दैन्यभाव (अधीनता-प्रवृत्ति) का, जहाँ तक इष्टदेव का सम्बन्ध था, कोई स्थान नहीं था। उनकी भक्ति में मुख्य भाव या तो वात्सल्य था जिसके कारण स्नेहादि कमल गुणों की उत्पत्ति होती है, या उत्सुकता का भाव, जिसने उन्हें कृष्ण की रहस्य लीलाएँ गाने को बाधित किया। उनकी सुन्दरतम कविता में न पलायन-वृत्ति है, न अंतर्मुखी द्वन्द्व की प्रवृत्ति, न आत्मपूणा-भाव न अधीनता, न अस्तित्व स्थापन। उनकी भक्ति रागात्मक है। तोत्र राग केवल शृंगार की भाषा से ही प्रगट होगा। "मनुष्यों के सम्बन्धों में सबसे अधिक सम्बन्ध दाम्पत्य प्रेम का है। ईश्वर और मनुष्य का सम्बन्ध इससे भी ऊँचा और बढ़ा-चढ़ा होना चाहिये। यही शृंगारी उपासकों की उपासना का मूल आधार है। जो सम्बन्ध हमारे ज्ञान में सबसे उत्तम हो, ईश्वर का सम्बन्ध उससे भी अधिक उत्तम होना चाहिये। यूरोप में भी ईसाई सम्प्रदाय को मसीह की स्त्री माना है, और दाम्पत्य प्रेम को प्रेम का आदर्श कहा है। सुलेमान का गीत, जिसको भेष्ट गीत कहा जाता है, शृंगार की भाषा से परिपूर्ण है।" ('नवरस' पृ० १३६-१३७)

साधारण और परमधुर भक्ति के अर्थ हैं—भगवान में प्रियतम या प्रियतमा-भाव। कबीर और मीरा इसके भेष्टतम उदाहरण हो सकते हैं। परन्तु कृष्ण-भक्तों की भक्ति में मधुर भक्ति इस रूप से नहीं आई है। गोवियों की भक्ति भक्त का आदर्श है। स्वयं गोपी बनकर प्रियतम के रूप कृष्ण को नहीं रिझता। उनकी भक्ति मन का ही सकल्प है। भक्त अपने मन में गोविंदों की ही मिलनाकांक्षा और वियोग का अनुभव करता है। यह भक्ति यह कैसे प्रगट करे? क्या यह उस तरह का आत्माभिव्यक्ति-प्रधान काव्य लिखे, जैसा कबीर

के साहित्य में है। वह ऐसा नहीं करता। वह अपना आत्मचिन्तन और आत्ममन्त्रण गोपीकृष्ण के प्रेम-विग्रह में ही प्रगट करता है गोपियों का मिलनसुख नन्ददास का ही संकलगात्मक मिलनसुख है, उनका विप्रलम्भ इनका ही संकलगात्मक वियोग है। इस प्रकार कवि की सत्ता उसके काव्य में ही प्रतिष्ठित है। नन्ददास के काव्य में प्रभुर भक्ति का यही रूप है। राधाकृष्ण और गोपियों का जो संयोग-वियोग मृगार है, वह नन्ददास के लिए भक्ति ही है। उनकी तटस्थ भाव से इस लीला में भाग लेने और उसकी आत्मा में अनुभव करने की भावना ही इसे भक्ति बना देती है। कबोर कहते हैं—

बालक आये गोहरे

गोपियों का यह भाव इसी प्रकार यों है—

आज मेरे धाम आये री नागर नन्दकिशोर
घन दिवस घन रात री सजनी घन माघ सखी मोर
मंगल गावो चौक पुरावो बंदनवार बँधावो पौर
नन्ददास प्रभु सग रस बस कर आगत करहुँ मोर
दोनों में प्रकार का कोई अन्तर नहीं है। हाँ, गोपीकृष्ण या राधाकृष्ण का आश्रय ले लेने से संयोग-वियोग प्रसंग और भी विस्तृत, विशिष्ट और नैकट्य पूर्ण रूप से प्रगट हो सका है। आज के महत्त्वक-प्रथा अतिनैतिक युग में स्थूल संयोग के ऐसे चित्र चमकें होंगे जैसे—

१—धमुनातट नभ निकुंज द्रुम नभ दल पक्षोप पुष्प

तहाँ रची नागर वर रावटी उसीर की

कुमकुम घनशर घोर पक्ष दल मोर मोर

धरचत खहुँ और अक्की पंकज पाटीर की

शोभित तन गौर स्वाम सुखद सरज कुंजधाम

परसत सीतल सुगन्ध मंदगति समीर की

नन्ददास दिव प्यारी निरल सखी ललितता ओट

अवन धुनि सुन किङ्कणी में मोर की

२—कुसुम सेज पोढ़े दम्पति करत हे रस बतियाँ

त्रिविध समीर सीसरी उसीर रावटी मध

खसलवाने सीचे मुभग जुड़ावत हे पिय छतियाँ

कपोल सों कपोल दिये मुज सों मुज मीढ़े

फुच उतग पिय राजत हे भतियाँ

नन्ददास प्रभु कनक पर्यंक पर सख मुल बिलस

केलि करत मोहन एकगत मतियाँ

ही सकता है, इन संयोग-वियोग के प्रसंगों में नन्ददास ने जयदेव, प्रद्योतपुराण, विद्यापति और सूर की परम्परा को ही निभाया हो। परन्तु हम इतनी दूर जाने के लिए तैयार नहीं। नन्ददास के संयोग विषय आध्यात्मिक नैष्ठिक के ही प्रतीक हैं, और उनके वियोग वर्णन में आध्यात्मिक विरह ही प्रकाशित हुआ है।

नन्ददास के सारे शृङ्गार मच्छि-काव्य को हम दो भागों में बाँट सकते हैं:

(१) जिसमें राधाकृष्ण का केलिविलास है। नन्ददास ने इसमें विरह को स्थान नहीं दिया है। राधाकृष्ण तो निरपेक्ष निकुञ्ज-विहारी हैं, फिर प्रकृति-सुख में वियोग किस तरह सम्भव है? इस कथा में स्थूल शृङ्गार के दर्शन होते हैं। शृङ्गारशास्त्र का सहारा बहुत कम है—लीलाभाष की ही प्रधानता है। (लीलाव्रतु कैवल्यम्—वल्गुभा०)। यह काव्य पदों में ही है। कथा-काव्यों में गोपीकृष्ण का ही प्रेम-वियोग चित्रित है।

२—गोपीकृष्ण के प्रेम की कथा या इस प्रेम की धारणा (जैने रूपमन्त्री)। इस प्रसंग में भृङ्गार-शास्त्र का पगपग पर सहारा लिया गया, और उसके सहारे प्रेम-विकास की मंजिलें भी निर्धारित की गई हैं। सूर जैसी तत्त्वमयता इस काव्य में नहीं है, पगपग पर सतर्कता के दर्शन होंगे। परन्तु राधाकृष्ण के निकुञ्ज-विहार, होली-काणादि

सुरसागर में मी नहीं समा सका होगा। यही बात नन्ददास के सम्बन्ध में कही जा सकती है। जो ग्रन्थ में प्राप्त है, उनमें उनका कवि और त्रिवेचक का रूप ही प्रधानता पा सका है। उसके बल पर उनकी भक्ति का मूल्यांकन नहीं कर सकते। हाँ, उसके द्वारा हमें उनके भक्ति-पूर्ण हृदय की भाँकी अवश्य मिलती है। हमें इतने से ही संतोष करना पड़ेगा। यह कहना भूल होगी कि काव्य में सतर्क रहने या गोपीप्रेम चित्रण में रसशास्त्र को आधार बनाने के कारण कवि भक्त की सजा का कोई अधिकारी नहीं रह गया। हमें यह समझ लेना है कि सारा भक्ति-साहित्य देवता के आगे की प्रसादी है जो आज देवाल्यों के बाहर आकर कौड़ियों के मोल बिक रही है। इस प्रसादी में सारा लोकछान, सारा शास्त्रज्ञान, सारा हृदयबोध देवता को समर्पण किया गया था। जो चीज़ संसार में सबसे सुन्दर है, उसे ही तो विष को अर्पण किया जाता है। अब कवि राधाकृष्ण या गोपीकृष्ण के गीत देवता को अर्पण कर रहा है तो वह उसके लिए अच्छी से अच्छी सामग्री का उपयोग क्यों न करे। इसीलिए कृष्ण-काव्य में रसशास्त्र के अप्रत्यक्ष-अव्यापन का आग्रह है।

इसमें नन्ददास को 'रसिक' कहा गया है। हम देख चुके हैं कि नन्ददास 'रसिक' भी थे, वे चित्राणों के पीछे किस प्रकार दीवाने हो गये थे। किस प्रकार रूपमंजरी (रसिक मित्र) से उनका स्नेह अन्त तक बढ़ रहा। वे यत्न भी थे—और अच्छे भक्त। उनके साहित्य का कोई भी पाठक उनकी भक्ति से प्रभावित हुए बिना नहीं बच सकता। बिन विशेषताओं का इस छुपाव में उल्लेख हुआ है, वे हैं—

- (१) उनकी उक्तियों की सरसता (सरस उक्ति)
- (२) उनका तर्कवाद (बुद्धि)
- (३) उनके काव्य का भक्तित्व ('भक्ति')
- (४) रसतत्त्व की उत्कृष्टता ('रस')
- (५) उनके काव्य का गीतिमाधुर्य ('गान उच्चारण')

भूषदास ने कहा है—

नन्ददास जो बहुत कथो रागरम हों पमि
अच्छर सरस सनेहमय, सुनत सखन उठ जायि
रसिकदशा अद्भुत हुती, कर कवि सुदार
सत प्रेम की सुनत ही छुटत मोह बलधार
बाचगे सो रस में निरै, लोभत नेह की बात
आछे रस के बचन सुनि बेगि बिचस हो आत

इस छन्द में नन्ददास के काव्य की सुन्दर आलोचना है और उसके प्रभाव का मार्मिक वर्णन है।

इस छोटी-सी भूमिका के बाद हम नन्ददास के काव्य के विभिन्न अंगों पर मिल-मिल शीर्षकों के अवगत विचार करते हैं—

१—सम्बद्ध कथा कहने की शक्ति (कथा-सौष्ठव)

पुष्टिमार्गीय कृष्ण-कवियों में केवल नन्ददास ही ऐसे हैं जिन्होंने ऊटकर पशु के अतिरिक्त सम्बद्ध कथा लिखने का प्रयास किया है। सरदास और रचनाओं में कथात्मक गीतिकाव्य के दर्शन होते हैं, परन्तु

पदों की एकाग्र मुक्तता के कारण उनमें कथा का सौन्दर्य पूर्णतः प्रगट नहीं हो सकता। सूरदास और अन्य पुष्टिमार्गीय कवियों ने लला-काव्य लिखे हैं जो संस्कृत के अतर्गत आ सकते हैं। पान्डु इनका भी प्रकाशन अधिकतर पदों या गेय छन्दों में होने के कारण वे कथा-काव्य की दृष्टि से इतने महत्वपूर्ण नहीं हैं, जितने नन्ददास के काव्य।

नन्ददास के कथात्मक ग्रंथ हैं—१ रासपंचाव्यासी, २ रूपमञ्जरी, ३ दशमस्कन्ध भाषा, ४ कविमनी मंगल, ५ श्यामसगाई। उन्हें कथा लिखने का इतना व्यसन है कि उन्होंने विरहमंजरी जैसे मुख्यतः सिद्धान्त-ग्रंथ को उदाहरण-स्वरूप कथा कहकर पूरा किया है और मानमंजरी नाममाला जैसे पर्यायवाची शब्दों के कोष में मानवती राधा के मानमोचन की कथा भी विकसित की है। वस्तुतः मध्ययुग में कथा कहने-सुनने का अन्धा प्रचलन था। पुराणों की कथा बॉची-मुनी जाती थी। नन्ददास उनसे अत्यन्त निकट से परिचित थे। वे स्वयं कथावक्ता थे और बल्लभ सम्प्रदाय में भागवत जैसे पुराणों का सप्ताहपारायण तक होता था। सम्प्रदाय के गुरुओं ने भी कथाओं को अपने उपदेश का साधन बनाया था। 'वार्ताएँ' इन्हीं कथाओं का लिपिबद्ध संग्रह है। अतः ऐसे युग में और कथा-वार्ता के देने छातावरण में रहकर यदि नन्ददास को सम्बद्ध कृष्णलीला (कथा) लिखने की प्रेरणा हुई हो, तो आश्चर्य की बात क्या है।

नन्ददास की रचनाओं की निरवृत्त आलोचना करने हुए हमने उनके कथा-काव्यों की वर्यवस्तु को उपरिष्ठ किया है और उसकी मौलिकता पर भी विस्तार-पूर्वक विचार किया है। इससे यह प्रगट होता है कि नन्ददास में सम्बद्ध कथा कहने की चमत्ता थी। उनमें कथा के उपेक्षित सूत्रों को पकड़ने और विकसित करने की शक्ति थी, परन्तु उनका क्षेत्र परिमित था।

(१) यह पौराणिक कथाकार है, अतः कला का स्थान भीष्ट है ।

(२) मूल कथाएँ परा-पर्य पर उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण करती हैं ।

(३) उनकी दार्शनिक एवं आध्यात्मिक तत्त्वों की विवेचना कला के मौलिक प्रभाव को बाधा पहुँचाती है ।

(४) उनकी कला वस्तु को नवीन रूप में उपस्थित करने की अपेक्षा, उसकी छत्रावट में ही अधिक लगती दीखती है ।

केवल रूपमन्त्रों ही नया प्रप है जिसमें गुणनात्मक दृष्टि से उनके हाथ परम्परागत कथा में बँधे नहीं हैं । अतः यहाँ भी ध्येय निःसीम प्रेम की प्रतिष्ठा ही है जो बल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख स्थान है । इस कथा का दाँचा सूरी कवियों की आश्चर्यात्मक कविता से मिलता-जुलता है ।

‘रामचन्द्र’ और मूर के गाएड़ी कृष्ण के कथा—पदों के पढ़ने में पाठकों को पता लगेगा कि नन्ददास को जग से क्यागुप्त की पकड़ उभै कला का सुन्दर विकसित रूप देने का कितना कौशल आता था ।

परन्तु सब ग्रंथों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कथा के कहानीत्व पर नन्ददास की दृष्टि अधिक नहीं थी, यदि वे कलात्मक कहानी को ही अपना ध्येय बनाते, तो कदाचित् वे गुलामी के समक्ष ही पड़ते । परन्तु उन्होंने अपने ग्रंथों में कर्णों आदि काव्यमय प्रसंगों पर ही अधिक बल दिया । ‘कविमयी मंगल’ और ‘मुद्रामावर्ति’ की कथाओं को मूल कथाओं से मिलाने पर यह

आगे बताया कर दिया। इनसे यह अनुमान होता है कि उन्हें ब्रह्माकार का अनेका ब्रह्माकार का यह प्रधान था। फिर भी कुरुक्षेत्र के काण्वसमूहों के बीच से मन्दराग के ब्रह्मा-काण्व ब्रह्मसमूह साक्षिण की दृष्टि में कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

२—अग्निप्र विप्रस्य

मन्दराग के काण्व अग्नि काण्व नहीं है, भावनाकाण्व या वैदिकी काण्व है, अतः यहाँ पाथों का अग्निः मित्रान्तो को प्रकट करने के लिए या अग्नि की विशेष भावना को पूज्य करने के लिए ही है। अग्नि अग्नि-विप्रस्य की दृष्टि में उन्हें अग्नि के भी ज्ञान नहीं उठती। फिर भी थोड़ा बहुत सा अध्ययन उनके पाथों का अग्रस्य हो सकता है।

उद्धव

भैरवगीत के एक मुख्य पात्र उद्धव हैं। उनका अग्नि बहुत कुछ भागवत के उद्धव के अग्नि जैसा है। उन्हें भी ज्ञान का गर्व है जो अन्त में स्थलित हो जाता है। यहाँ भी वे साक्षिक पंडित हैं। सूरदास के उद्धव इनसे कुछ भिन्न हैं। उन्हें ज्ञान का गर्व तो उतना ही या कुछ अधिक है, परन्तु तर्कशास्त्र में वे पारंगत नहीं हैं। गोविण्ड उन्हें बुढ़ी तरह बना डालती हैं। मन्दराग के उद्धव कृष्ण पर मोक्ष को प्रकट करते हैं कि उन्होंने मोक्ष जैसी सच्ची प्रेमिकाओं की उपेक्षा की है यह मोक्ष सात्विक भाव ही है, सामयिक नहीं, अतः भक्तिभाव की दृष्टि से यह उपादेय है। स्वयंभाव के भक्त मन्दराग या सूरदास ही इस प्रकार के मोक्ष की कल्पना कर सकते थे।

गोपियों

भैरवगीत की गोपियों का एक सामूहिक चित्र ही हमारे सामने आता है। ये उसी प्रकार एक इकाई हैं जिस प्रकार सूरदास की गोपियाँ। सूरदास की गोपियाँ भावप्रवण हैं, मन्दराग की गोपियाँ मात्र

। यह तो है ही, वे भी बुगी तरह रोती-बलपती हैं, परन्तु साथ ही उनमें द्विरूप की मात्रा कम नहीं है, और तर्क में पंडित उद्धव पर भी जय पा जाती है। वास्तव में यह तर्क की प्रधानता नन्ददास के अग्ने-द्विरूप का प्रकाशन है। 'भैरवगीत' में नन्ददास ने गोपियों के विरह-बड़ा मार्मिक चित्रण किया है, इससे उनका विरहिणी रूप ही हमारे अग्ने अधिक प्रमुक्तता से आया है। 'रासपंचाध्यायी' में हम उनके योगिनी रूप से भी परिचित हैं और उनके उल्लास—हास-विलास भी छाया रहते हैं। परन्तु गोपियों के संयोगिनी रूप की अपेक्षा उनका योगिनी-रूप ही अधिक मार्मिक है।

'विरहपंजरी' में एक 'ब्रजबाला' की कथा है। यह भी गोपी है। नन्ददास का अभीष्ट गोपीविरह का चित्रण है। अतएव इस गोपी की भी वैयक्तिकता प्रस्फुटित नहीं हो पाई है। यही हाल 'दशमस्कन्ध' की गोपियों का है।

वास्तव में गोपियों कृष्ण के प्रति प्रेम और विरह की एक 'प्रतीक' है, अतएव उनके चरित्र का विकास कहीं नहीं हो पाया है।

रूपमंजरी

'रूपमंजरी' एक सुन्दर, परन्तु दैव-प्रताडित, नायिका के रूप में चित्रित होती है। परन्तु इन्दुमती इस अभागी बालिका का परिचय कृष्ण के सौन्दर्यमय-रूप से करा देती है, और वह कृष्ण से प्रेम करने लगती है। उसका प्रेम और विरह 'गोपियों' का ही प्रेम और विरह है। अतः यह चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'गोपी' ही है—सुन्दर, भाव-प्रबल संयोग में रहतः, उल्लास, वियोग में रहतः 'परकीया' प्रोक्षित-पतिका।

इन्दुमती

इन्दुमती 'रूपमंजरी' की नायिका की सखी है। इसने नायिका के

का है और तब से मन 'मन्द' में अपने हृदय का अभिव्यक्ति
है 'मन्द' का अर्थ है 'मन्द' का है, वह वही हृदय हृदय
का है

मन्दराज

मन्दराज के राज्य में, मन्दराजी को होकर राजा का बिन्दु का
नहीं है — केवल स्वाम्यमण्ड में राजा कागो है । यहाँ राजा का
अवकाश नहीं प्रकाश है बिना प्रकाश मन्दराज के राज्य में, मन्दराज के
राजा लक्ष्मण राजा लक्ष्मण का राजा कागो है, राजा लक्ष्मण का
में और हो । मन्दराज को राजा में कृष्ण उत्पन्न मन हर लेते हैं, राजा
वह हृदय नहीं कागो —

सब लक्ष्मण के भुक्त हैं, देवन सभी होकर
अरत परत होऊ भये, कृष्ण बिन्दो राजा

मनहि कृष्ण भिरे

मन हरि लेनी राजा, परो राजे मुरझाई
कृष्ण के वचन से बनी राजा के राजा का बड़ा सुन्दर बिन्दु
हुआ है —

सुनत वचन तबकाल, लक्ष्मण नैन उभारै
निरलक्ष्मण हो बनस्पान, बदन तै बेल लँकारै
सब अपने पर निरलि है, पुनि निरलि दिन मर
लँकार करायो बदन है, मन होनी मुक्तकार

सकुच मन में बही

राजकी में राजा मुग्धा, अनिकारिका, लक्ष्मण बनेक रूपों
लक्ष्मण पड़ती है, परन्तु मन्दराज को राजा में न वह औरपरिका
वह बर्तव्यता को लक्ष्मण को राजा में ।

रुक्मिणी

‘रुक्मिणी मंगल’ में रुक्मिणी का चित्रण हुआ है, परन्तु वह भी इसी तरह सुन्दरी विरहकुल नायिका का त्रिभु प्रकार अन्य गोवियों का। अन्य चरित्रों का विकास नहीं हो पाया—‘मंगल’ में उनका उल्लेख मात्र है, उनके कार्य-कलापों आदि का उस प्रकार विशेष विस्तार नहीं त्रिभु प्रकार भागवत में।

कृष्ण

‘स्थामसगाई’ में कृष्ण चतुर युवा चित्रित किये गये हैं, जो अपने प्रतिद्वन्द्वियों को खूब छद्माना जानते हैं, जिन्हें अपनी सम्मोहन शक्ति पर निरवास है। ‘शतपंचाध्यायी’ में वह क्रीडारत मधुरमूर्त्त भगवान हैं। ‘भैरवीयत’ में उनके प्रेमी और सम्वेदनाशील रूप का चित्रण दो एक पंक्तियों में हुआ है। ‘रुक्मिणी मंगल’ और ‘सुदामाचरित’ में कवि ने उनके शील को विकसित करने का विशेष प्रयत्न किया है। अन्य स्थलों पर, जैसे मानलीला में, वे दक्षिण नायक मात्र हैं।

सब तो यह है कि नन्ददास के काव्य में चरित्र-चित्रण को विशेष स्थान नहीं मिला है—हां, वे प्रेयविरह के कवि हैं, उनके नायक-नायिकाएँ प्रेम और विरह के मूर्त्त रूप मात्र हैं, उनका वैयक्तिक चरित्र हमारे सामने नहीं आता।

३.—वर्णन

वर्णन कथात्मक काव्यों के सबसे महत्वपूर्ण अंग होते हैं। नन्ददास के काव्य में अनेक वर्णन आते हैं। वे वर्णन लिखने में बहुत पटु हैं—थोड़े में ही बहुत लिख देते हैं। इन वर्णनों के लिखने में उन्हें थोड़ी बहुत सहायता उन ग्रन्थों से चाहे भले ही मिली हो, जिन ग्रन्थों के आधार पर वे अपनी रचना कर रहे थे, परन्तु उनके अधिकांश वर्णन मौलिक हैं।

नन्ददास ने नगर का वर्णन कई बार किया है। एक पुर का वर्णन रूपमंजरी में आता है जहाँ धर्मवीर राजा राज करता था—

मये घोरहर सुन्दर, सुवान, अनु घर पे दूधर कैलास
ऊँची अटा घटा चतराही, तिन पर केकी केलि कराही
नामस्त सुमग मखंड हुलत यौ, गिरधर पिय को मुकुट लटकवौ

गुदी उड़ी छबि देत अति, अस बहु बनि रछौ बान
देखन आवत देव अनु, चढ़ि चढ़ि विमल विमान

आठपाठ अमराइ बरारी, जई लगि फूलत ती कुलवारी
जुमहि फूल मालन छबि भरी, अवनो उतरि परी अनु परी
बोलहि मुक, सारिक, पिक, तोता, हरियर, चातक, पोत, करोती
मीठी धुनि सुनि अस मन आवे, प्रेन मनौ चटमार पढ़ावै
फलन के भार नमित द्रुमन ऐसै, हरति पाइ बड़े जन जैतै
का कहिये आहार निहारै, मारम हंस बंस छबि छारै
निरमल अल अनु मुनि-मन आहो, परतत लन घन-पातक आहो
फूल फूलि रहे बलब सुदेसे, हरीवर, राखीव, बुसेसे
पानी पर पराग परी देखो, खीर फुटक मरी आरति त्रैनो
पदमन को अब पौन हुलावै, तक लपट अलि पैठि न पावै
अनु तनकारति मानिनि तिथा, अनि गुक्ति रत आग्यो विथा

कंच-कंच प्रति पुंन अलि, गुंनत हमि परमान
अनु हवि-हरतम छवि मगवौ, रोषत ताके तात

वर्णन में अति ने उपमा-उपमेया की अकड़ो लदा दिग्गजा है और
खजाने में अम्व-अंबो की रचना में भी लहायना की है जैसे—

भारत-नमि बिटव तव रहे भूमि निआगर
जलकारी जलज बिमि नहि सुनई पाइ

फलन के भार नमित द्रुमन ऐसैं, संवति पाद बदे जन जैसैं

(नन्ददास)

परन्तु वर्णन-शैली में अलंकारों का प्रचुर प्रयोग उसके सौन्दर्य को बढ़ा देता है। नगर के दूसरे वर्णन 'सुदामाचरित', 'कस्मिनी मंगल' और दशमस्कन्ध में मिलेंगे। पहले दो प्रयोगों में दारका का वर्णन है। परन्तु कवि एक ही सामग्री को अनेक प्रकार से उपस्थित कर रहा है—

उड़ी नभ गुड़ो बनी छवि (७५)

तैसैंई देव बिमाननि चदि, दारावति कायें (७७)

(मंगल)

गुड़ो उड़ी छवि देत अति, अस बहुबनि रहौ बान
देखन आवत देव अनु, चदिचदि बिमल बिमान
(रूपमंजरी)

कुञ्ज कुञ्ज प्रति, पुंज, भँवर, गुञ्जत अनुहारे
मनौ रवि-हर तम भजे, तजै, रोवत है बारे
(मंगल)

कञ्ज कञ्ज प्रति पुंज अलि, गुञ्जत हमि परमात
अनु रविहर तम तजि भग्यौ, रोवत ताके तात
(रूपमंजरी)

नन्ददास के अन्य वर्णनों की भाँति यहाँ भी वे मायाशैली के द्वारा विशेषता वेदा करने से नहीं चूकते। उनके दो अरण्य हैं—वर्णों का माधुर्य और अनुशास—जैसे

उज्जल मनिमय पटा, अटा सौ पातैं करई
अगमग अगमग जोति होति, रविवसि सौ अरई
चपल पताका करकै, अरकै अरक किरन बई
पाम न, कण्डै, दरसै, निर ॥

१२५ मने जग का वर्णन कई बार किया है एक पुर का वर्णन
कालिका न्यास है वहाँ नमोऽस्तु राजा गुरु करता था—

नय नीरहर मुलद, गुणग बनु नर है दूसर केनास
ऊँची अटा पटा बलवन्त नैन पर केकी केनि कराही
नाचत मुभग गिराह झलन गौ, गिराध विर को मुकुट लटकवौ

गुड़ी उड़ी द्रवि देत आनि, अस कहु बनि गयी बान

देखन आसत दस बनु, चट्टि नाद विमल विमान

आमगास आमगाह बगाना, बई लागि झलन गौ फुलवारी
नुभहि झल मालन छवि भगी, अवता उतार परी बनु परी
बालाई मुकु, शारिक, विक, ताता, हाथपर, चातक, गा, करोती
मीठी धुनि मुनि अस मन आवै, मेन मनौ चटनार पढ़ावै
फलन के भार नमित द्रुमन ऐसे, संरति पाह बड़े जन जैसे
का कहियै कासार निकाई, शारस इस बंस छवि छाई
निरमल जल बनु मुनि-मन आही, परसन स्वन जन-पातक आही
फूल फूल रहे जलज सुदेसे, इंदीवर, राजाव, कुसेसे
पानी पर पराग परी ऐसे, बीर फुटक भरी आरति जैसी
पद्मन कौ जब पौन डुलावै, तब लपट अलि वैडि न पावै
बनु तनकारति मानिनि तिया, आन जुवति रत जान्यो पिया

कंच-कंच प्रति पुंज अलि, गुजत हमि परभात

बनु रवि-हर तम तजि भग्यौ, रोवत ताके तात

इस वर्णन में कवि ने उपमा-उपमेया की अच्छी छटा दिखलाई है और
वर्णन वस्तु को समझने में अन्य कवियों की रचना से भी सहायता ला है जैसे—

फल भारेल नमि बिटप सब रहे भूमि निछराह

पर उपगारी पुरुष जहि उरहि समपति पाह

इसी से उसका वर्णन साधारण अनुभव के स्तर से उठकर काव्यमय, पौराणिक अनुभूतिमय हो गया है। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में भले ही 'वनस्थला' और 'राजस्थला' के ऐसे ऐश्वर्यपूर्ण वर्णन मिलें जैसे—

तान्तर कोमल कनक भूमि, मनिमय मोहति मन
 देखित सब प्रतिदिव, मनो धर में दुखरी बन
 मलय-मलय भलमलत, ललित बहु मेवर उड़ावे
 उड़ि उड़ि परत पराग, बहु छवि कहत न आवे
 भी जमुना अति प्रेम भरी, तट बहत लु गहरी
 मनि-मण्डित महि मोहि, दीर अनु परसत लहरी

परन्तु 'भागवत' में वृन्दावन 'वन' है और कृष्णभक्त काव्यों ने उसका अत्यन्त यथार्थ चित्रण किया है। नन्ददास ने उसे 'कनक भूमि' 'मणि-मण्डित महि' बना दिया है। इस प्रकार धार्मिक भावना और कल्पना उनकी वाक्य-प्रतिभा को स्वतन्त्र दौड़ नहीं दौड़ने देती। इसी प्रकार 'रूपमंत्ररी' में वह एक अलौकिक वन का वर्णन कर रहा है जो नायिका ने स्वप्न में देखा है—

एक ठाँउ एक वन है जानौ, ताकी छवि हो कहा बखानौ
 आनहि रंग पुहुप में देखे, अपनी बारी नहि तस पेखे
 औरहि भाँति मेवर रव राखै, ठौर ठौर कहु जत्र से बाँजै
 रुखन देखि भूल मजि जाई, यह उगलान सोच है माई
 रटहि बिहंगम हमि मन हरै, अनु द्रुम अप में बातें करै
 गहवर कुञ्ज अति सौहै, मनिमय मंदप छवितहैं को है
 पुहुप बितान बान अस बाने, चंद चलोडे के अनु ताने

(२०६-२१५)

इस वर्णन को जायसी के इस वर्णन के सामने रलिये—

वन अमराठ लाग चहुँ पासा । उठा भूमि हूँत लमि असा ।
 तरिवर सब मलय गिरि लाई । भइ जग छौँद, रैन रोइ छाई

इसी से उसका वर्णन साधारण अनुभव के स्तर से उठकर काल्पनिक, पौराणिक अनुभूतिमय हो गया है। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में भले ही 'वनस्थला' और 'रासस्थला' के ऐसे ऐश्वर्यपूर्ण वर्णन मिलें जैसे—

तात्तर कोमल कनक भूमि, मनिमय मोदति मन
 देखियत सब प्रतिविम्ब, मनौ धर मैं दुसरो बन
 बलज-बलज भलमलत, ललित बहु भँवर उड़ावै
 उड़ि उड़ि परत पराग, बल्लु छवि कहत न आवै
 श्री जगुना अति प्रेम भरी, लट बहत जु गहरी
 मनि-मोदित महि माँहि, दीर अनु परत लहरी
 परन्तु 'भागवत' में पुनरावन 'वन' है और कृष्णभक्त काव्यों ने उसका अत्यन्त यथार्थ चित्रण किया है। नन्ददास ने उसे 'कनक भूमि' 'मणि-मोदित महि' बना दिया है। इस प्रकार धार्मिक भावना और कल्पना उनकी काव्य-प्रतिभा को स्वतंत्र दौड़ नहीं दौड़ने देती। इसी प्रकार 'रूपमंजरी' में वह एक अलौकिक वन का वर्णन कर रहा है जो नायिका ने स्वप्न में देखा है—

एक ठाँठ एक वन है जानौ, ताकी छवि हो कहा बलानौ
 आनहि रंग पुहुप मैं देखे, अपनी बारी नहि तब देखे
 औरहि भाँति भँवर रव रात्रि, ठौर ठौर बल्लु जत्र से बाँज
 रुखन देखि भूल भवि जाई, यह उरखान सँच है माई
 रडहि बिहंगम इमि मन हरै, अनु हुम अप मैं बातें करै
 गहवर कुँबुज अति सौहै, मनिमय मंदप छवितह को है
 पुहुप बिलान बान अस बाने, बंद बलौडे के अनु ताने

(२०६-२१५)

इस वर्णन को जायसी के इस वर्णन के सामने रलिये—

वन अमराठ लाग चहुँ दासा । उठा भूमि हुँत लागि अका ।
 तरिवर सरे मलय गिरि लाई । मह जग छौँ, रैनि मोह छाई

और टौर की आगि पिय, पानी पाइ सुभाइ
पानी में की आगि बलि, काहे लगी सिराइ

यहाँ कवि ने भीरी के नये पंख उमने और नायक से नये पंखों को मुकुट में स्थान देने की बात कहकर सजीवता ला दी है और प्रसंग को निरर्थक 'बारहमासा' का अर्थ होने से बचा लिया है। इस 'बारहमासे' में सब से सुन्दर चित्रण 'सावन' का हुआ है—

अब देखियत उमगी धन-माला, मानहुँ मत्त मदन की टाला
छुटे जु बन्धन तोरी-मरोरि, धनुष बने मनु पचरंग डोरि
बगन की पंक्ति बड़े-बड़े दंत, धुरवा मद के पटे बहंत
गरबनि, गुंजन, सुनि-सुनि महा, दरकत हिय, दुख कहिये कहा
मणि-भरि सुद-भडारनि पानी, मागत मोहि, करत नकवानी
धूमत फिरत महा मतवारे, दाहत पिय के अवधि-कगरे

यहाँ कवि ने 'बादलों' से हाथी का रूपक खड़ा किया है। यह मतवाले हाथी अन्त की पंक्ति में अब—

दाहत पिय के अवधि-कगरे

कहे जाते हैं, तर प्रवृत्ति-चित्रण के साथ-साथ विरहिणी की मन:व्यथा का भी आव ही चित्रण हो जाता है। ऐसे स्थल कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और समसामयिक काव्य में विरल हैं।

'रूपमन्त्री' में परशुत-वर्णन आता है जो बारहमासा की भाँति ही विद्योग-काव्य है, सद्योग-काव्य नहीं। परन्तु उसमें कवि ने विशेष वर्णन केवल 'वर्षा' का ही किया है, शेष ऋतुओं का केवल विरहिणी पर प्रभाव मात्र दिखा कर ही उसे संतोष हो गया है। काल्पनिक में यहाँ वर्णन के साथ साथ ही कवि नायिका की 'उन्माद' दशा का भी चित्रण कर रहा है—

उमगे बादर कारे कारे, बहरे बहुरि भयानक भारे
गुमदनि, मिलनि देखि डर आवै, मनमय मानो हाथी लरावै

और टौर की आगि पिय, पानी पाइ सुमझ
पानी में की आगि बलि, काहे लगी सिंगर

यहाँ कवि ने भीरों के नये पंख उगाने और नायक से नये पंखों को मुकुट से स्थान देने की बात कहकर सजीवता ला दी है और प्रसंग को निर्वैयक्तिक 'बाग़माला' का अंश होने से बना लिया है। इस 'बाग़माला' में सब से सुन्दर चित्रण 'सावन' का हुआ है—

अब देखियत उमगी पन-माला, मानहुँ मत्त मदन की टाला
छुटे छु छन्धन सोरी-मसोरि, धनुष बने मनु पचरंग होरि
बगन की पंक्ति बड़े-बड़े दंत, भुरखा मद के पटे बहंत
गरबनि, मुंठनि, मुनि-मुनि महरा, दरकत हिय, दुख कहिये कहा
भक्ति-भरि सुंद-महारनि पानी, मात मोहि, करत नकषानी
धूमन हिरत महरा मतवारे, टाहत रिय के अवधि-कगारे
यहाँ कवि ने 'बादलों' से हाथी का रूपक रचा किया है। यह मतवासे हाथी जल की पंक्ति में बंध—

टाहत रिय के अवधि कगारे

कहे जाते हैं, तब प्रवृत्ति-चित्रण के साथ-साथ विहिणों की मन प्रवृत्ति का भी ज्ञाप हो चित्रण हो जाता है। ऐसे स्थान कला की दृष्टि से आवश्यक महत्वपूर्ण हैं और समसामयिक काव्य में विरल हैं।

'रूपमन्त्री' से परशुमन्-वर्णन आता है जो बाग़माला की भक्ति ही विद्योक्त-काव्य है, उद्योक्त-काव्य नहीं। परन्तु उनमें कवि ने विद्योक्त वर्णन केवल 'बर्षा' का ही विषय है, जेप शत्रुघोष का केवल विहिणों पर प्रभाव ज्ञाप दिया कर ही उसे संतोष हो गया है। काव्य में यहाँ वर्णन के साथ साथ ही कवि मार्गिका को 'उत्पाद' रचा का भी चित्रण कर रहा है—

उमगे बारर कारे कारे, बहरे बहुनि मलयज छोरे
धूमदधि, निभनि देखि तर जाई, मनमन छाती हाथी लाई

पवन महावन लै लै भावै, अंकुश-छटन छोर-उपचावै
 भामिनी भागि भवन बुरि बाही, गिरि पर है कोउ कुंवर माई
 पन मैं तनक जु पिय उनहारी, तिहि लालच देखी बर नारी
 बगन की माला, नैन बिसाला, मानत पिय उर पंकज माला
 दामिनि दमक देखि दग नावै, पिय पट पीत छोर सुधि आवै

इस प्रकार का प्रकृति-वर्णन हिन्दी काव्य के लिए नई चीज नहीं है परन्तु अधिकांश हिन्दी प्रकृति-काव्य उद्दोषन के रूप में है। यहाँ वणन उद्दोषन के लिए नहीं है, रसपुष्टि के लिए ही यहाँ प्रकृति वर्णन का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार के वणन हिन्दी काव्य में बाल ही हैं। इन प्रकृति-काव्यों में कहीं-कहीं कवि ने भागवत के 'शरद-वर्णन' (दशमस्कन्ध, अध्याय २०) का सहारा लिया है, जैसे 'जो मार्ग कभी साफ़ नहीं किये जाते वे, वे पास से टूट गये और उनको पहचानना कठिन हो गया—जैसे अब 'द्विजाति' वेदों का अभ्यास नहीं करते, तब बालकर्म से वे उन्हें भूल जाते हैं। (भागवत)

बाट पाट नून छादित देखैं, अम्बास बिन बलि बिद्या जैसे

(रूपमंजरी, १५५)

'दशमस्कन्ध' अध्याय २० में भी यहाँ-शरद-वर्णन है, परन्तु यहाँ कवि भागवत का अनुवाद ही कर रहा है। इनमें कवि के हाथ स्वतन्त्र नहीं है।

नन्ददास ने वीथिका के लिए प्रकृति-वर्णन का प्रयोग किया है, यद्यपि साथ ही गौण उद्दोषन उद्दोषन भी है, जैसे—

कोनल बिरन अकन मानो मन अपाव रही गो
 मनमित्र लेजो लागि गुमइ गुमइ पुरि गयो गुनागन गो
 करकि दया सी बिरन कुछ समझन अब आई
 मनहुँ निनन बिगान सुरेम तनाव तनाव

मन्द मन्द चल चाख चन्द्रमा अति छवि पार्द
भजनकत है जनों रमरमण पिय कौतुक आई
इसके अतिरिक्त अलङ्कारों में भी प्रकृति का प्रयोग हुआ है जैसे—

टूटी मुक्तनमान छूटि रही भँवरे ऊपर
गिरति त्रिनि सुरसरी गिरि द्वै धारा धारीधर

इस प्रकार के प्रयोग लगभग प्रत्येक साहित्य में होते हैं, नन्ददास के काव्य से भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। परन्तु नन्ददास की विशेषता तो रसपूर्ण प्रकृति-चित्र उपस्थित करने में है जहाँ उन्होंने भाषा, भाव और रस को प्रकृति के साथ गूँथ दिया है। 'रसपंचाव्यायी' से हम एक उदाहरण देकर इस प्रयोग को समाप्त करते हैं—

कुसुम-धूरि धूपरी कुञ्ज, मधुकरिनि पुञ्ज कहँ
ऐमेहु रस आवेन लटकि कीनी प्रवेश तहँ
नव पल्लव की पैनी अति सुलदीनी खासै
सुन्दर मुमन सीठ निरलत अति आनंद हिय बरसै

अब तो यह है कि नन्ददास के काव्य में प्रकृति के अनेक सुन्दर चित्र मिलने हैं। उनके प्राकृत काव्य को हम दो भागों में बाँट सकते हैं—

(१) परम्परागत जैसे बारहमासा, पटञ्जल, भागवत के दण्ड का नैतिक चित्रण या उद्दीपन के लिए प्रकृति का प्रयोग, अथवा अलङ्कार के लिए प्रकृति से उदाहरण लेना

(२) रोमांटिक (—प्राकृत स्वच्छंदतावाद)

हारे कृष्णकाव्य को ही एक तरह हम रोमांस काव्य है, विशेषतः यदि हम उसका दार्शनिक और साम्प्रदायिक अंश हटा दें। इसी प्रकार का रोमांटिक प्रकृति-चित्रण हमें आदमी और अन्य

सूफी कवियों के काव्य में भी मिलता है। अन्यत्र इसमें इसके उदाहरण दिये हैं।

रूप-वर्णन के तो कितने ही चित्र हमें मिलते हैं। नन्ददास का अधिकांश काव्य नायक-नायिकाओं की प्रेम-विरह की कथा लेकर चलता है। इसलिए उभय-पक्ष का शारीरिक सौंदर्य अवश्य सामने लाना होता है। नन्ददास ने रूप-चित्रण की उस परम्परा पर ही खड़ा ही किया है जो 'नस्तखिन्व' के नाम से प्रसिद्ध है। 'रूपमञ्जरी' में नायिका के सौन्दर्य का बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है—

सीस पुहुप गूँथनि छवि ताही, मनौ सदन-मृग जानन आही
बेनी बनी कि सापनि आही, बुरी दीठि देखै तिहिं लाही
सोहत बँदि बरार की ऐसा, भाल भाग-मनि प्रगटी जैसी
झुब-धनु देखि मदन बह्नितयो, हर के समर समै दिन मथौ
अब बाके बल करौ सराई, हरी दिनक में हर हरतारै
बालपने पग चचलतारै, अब बलि छविले नैननि आई

X

X

X

नासिक नथ अनु मनमथ पासी, हाँथो हरि देव की माया सी
मृदु कपोल छवि बरनि न आही, भलके अलक गुमी जिन मारी
अचर मधुर मधि रेश सु टारी, अरुन पाट अनु पुई पवारी
लखत जु ईसत दसन की बोनी, को है हाडिम को है मोती
चिबुक कूप छवि उभडे जोई, जगत-रून पुनि परै न मोई
बँट-लोक छवि पीक की घारा, पीक परी सब छवि संगारा

X

X

X

सुन्दर कर राजन रँग मीने, एक बमल के अनु निवि कीने
मँजल है तु उठे कुच दोऊ, घाये न ठगमा आनि तर कोउ
कीरल, कुम्भ, मँभु सम माने, तारन बँधन लेउ नहिं परमाने
सब बही मुख की राति निविहरी, रबनी उर-छवनी पर बगी

रोमशाहि जय देहि दिवारी, जनु उत तै रैना की भौंई
 किशौ नीलमनिकिंचिनि माही, रोमावलि निहि मोति की छाँई
 किशौ लटी करि टिखि करतारा, रोमधार जनु चरदी अभाग
 गजन कटि किंचिनी रमाला, मदन मदन जनु बंदनमाला
 पारन मनिमय नूपुर धुनी, कंच-रिंजर मनौ मनमथ मुनी

आन धरत अई तई तदनि, अहन होत मो लोह

जनु धरती धरती विरे, तई तई धरनी बीर

इ'ए (भावक) के रूप का विषय भी कुछ इसी प्रकार हुआ है
 ये—

- सुन्दर विष को बदन निगलि, अल को नहि भूलौ
 कर सरोवर माँझ, मरस आमुष जनु पुलौ
 भुटिल अलक मुल कमल, मनौ मधुकर मगधारे
 तिन-मवि मिलि रहे लाल, नैन चंचल तु हमारे
 चितवनि मोहन मथ, भीह जनु मनमथ-पानी
 निरट ठगौरी आदि, मंद-गुदु, मारक हाँसी
 (राजवंशावली)

रोम शाह राज अल राज भीनी, मारक राज निबोह जग कीनी
 मोरचंद सिंह अल बहुत लोनी, मानी अली इटावक रोनी
 मोहन अल बहुत बाँधी भीही, मा मन जाने, कै पुनि होनी
 पुनि-पुनि सरद कमल राज लोही, दिन को मोरी कानि रोही
 मा मोहन के जेनन जाने, अलि ! नेऊ अलि रोके लागे
 मानिक मोरी कमलज जोरी, बहन तु मो धनि होनी अली
 पीन बहन दुनि पान न करो, दानिनी ली बहुत दिर है रही
 (कदम्बोरी ११३-११९)

वाक्य का अर्थ यह है कि शाहजी का बड़ा आदर है। 'नियम और नैति' लिखी गई है, इससे अर्थ यह है कि शाहजी का अर्थ है कि शाहजी

भिन्न अवस्थाओं की भाँकी मिलती है। एक ही छवि पर सैकड़ों पद हैं। जगन्नाथ (मगना), गान (बनचारण), राजमोग, शवन, आरती—प्रत्येक अवसर पर कन्हैया की शोभा का वर्णन लक्ष्य होता है। इसीलिए नन्ददास के पदावली-काव्य में कृष्ण के बीसियों सुन्दर चित्र मिलेंगे जैसे—

गाइ लिलावन सोभा भारी

गोरज रचित बदन-कमल पर, अलक झलक चुँगरी
नखखिल अंग सुमग बहु भूगन, परिहृत सदा दिवारी
मेलि रही है स्वरिक सभा पर, नग रंगन उजियारी
अमकन राजे भाल-गङ्गा-मुक, या छवि पर बलिहारी

इसी तरह राधे के भी अनेक चित्र हैं जैसे—

ठाढ़ी है मंजन किये अँगन अपने
देखि न मुनि न एसी संपति सर
बड़े-बड़े बार पाछे छूटे अति छात्रे
मानहुँ मकरध्वज चमर विरात्रे
बदन सलिल कण जगमग बोती
मानो इन्दुसुधा लामे अमोमय मोती
आधो मोतीहार चाक ठर रही लसी
कनक लता तें मानो उदय होत ससी
पुन सुरसरी सम मोतिन के हारा
रोमावाँल मिली मानो यमुना की घारा
पीक झलकन सौँह सरस्वती ऐनी
परम पावन देखी मदन जवनी
अंचल उड़न छवि कहिये कवन
रूप दीपखिला मानो परसी पवन

विशेष रूप-वर्णन अलंकारों के सहारे हुआ है। यही अलंकारों का उत्तम मूर्तिमत्ता उसका बल है। कृष्ण काव्य के आदि गुरु शक्ति और जयदेव के काव्य में ही ऐसे रूप का प्रचुर वर्णन है। इसी से इनकी परम्परा ही बन गई। नन्ददास ने इसी परम्परा को गे बढ़ाया। उनकी सम्प्रदाय-निष्ठा ने इसे रूपासक्ति और रूप-वर्णन गृहारिक प्रवृत्ति को आगे बढ़ाया।

कृष्ण-कवियों के वर्णनचतुर्वर्ग की परीक्षा की भूमि रासलीला। यही पर देखा जाता है कि कौन कवि कितना महान् है। यद्यपि रासलीला की आधार-वस्तु से बहुत कुछ सहारा लिया जा सकता है, मगर कवि उस समय तक सजीव चित्र उपस्थित नहीं कर सकता जब उसमें वर्णन करने की महान् क्षमता न हो। 'रासलीला' का वर्णन 'स्लीप ड्रीडर' नाम से विष्णु पुराण में है। भागवत में रास का स्पष्ट वर्णन है और उसका आधार लेकर जयदेव के गीतिगोविन्दम् में र-गीति की एक अद्भुत सामग्री उपस्थित करने की चेष्टा की गई है। रास और नन्ददास दोनों ने इन पूर्ववर्ती कवियों की सामग्री से शायदा ली है, परन्तु कदाचित् नन्ददास भी अपने रासलीला पदों में नन्ददास की 'रासपंचाध्यायी' के पाँचवें अध्याय की सामग्री से होड़ ही ले सके हैं। इसमें कवि ने अपने अध्ययन, अपने भाषा-ज्ञान और अपनी काव्य-प्रतिभा का पूरा-पूरा प्रयोग किया है और वह परीक्षा प्रथम भेड़ी में उतरा है।

४—रस

नन्ददास मूलतः भक्त हैं, परन्तु उन्हें पग पग पर कविता का भी आधार है। इसीलिए उन्होंने भक्तिभाव की रसदृष्टि से व्याख्या भी की है। कृष्णभक्त कवियों में से यही एक ऐसे हैं जिन्होंने मोदी-नृसिंह देव के रसतत्व से आध्यात्म ज्ञान की उपलब्धि सम्भव बताई है और मोदी-नृसिंह का ज्ञान आत्म-ज्ञान की लक्ष्य बना दिया है। भक्तिगीत रसमयी

और विरहमंजरी एवं रूपमंजरी काव्यों में यह शास्त्र अविकसित रूप में हमें उपलब्ध है, परन्तु उसमें जो कमी है उसे कवि एवं 'मण्डहार' की अन्य रचनाओं के अध्ययन से पूरा किया जा सकता है। जैसा हम आगे सिद्ध कर देंगे, नन्ददास के अधिकांश काव्यों का विषय प्रेम है—इसी को मधुरभाव की भक्ति भी कह सकते हैं। जो रसशास्त्र में भृङ्गार है, वही भक्तिशास्त्र में मधुरभाव है। इस प्रकार स्थापित होने के बाद रसिक कवि इसमंजरी नन्ददास के लिए व्याख्या में कोई अड़चन नहीं पड़ सकती थी। नन्ददास ने अनेक पदों में प्रेम के लोकोत्तर और दैवीरूप की ही विवेचना की है—

प्रेम प्रेम सो होय प्रेम सो पारहि जेये
प्रेम बैँधो संतार प्रेम परमारण पैये
एकै निरवय प्रेम को जीवनमुक्त रत्नाल
सौँचो निरवय प्रेम को त्रिहि तैं मिनी गोपाल

(भैरवगीत)

वे शब्द ही प्रेम को विषयवासना (कार्य-भाव) से छल्ला कर देते जब वे कहते हैं—

ऊँच कर्म से स्वर्ग है, नीच कर्म से भोग
प्रेम बिना सब पाँच मरै, विषय वासना रोग

(ऊँच कर्म से स्वर्ग मिलता है, नीच कर्म से भोग, परन्तु प्रेम बिना सब सों। विषयवासना के रोग में पञ्चग्रन्थ के माने हैं।) पर भागवत की लौकिक प्रेमरस से अभिन्न बनाकर मानिवाच्य को प्रेमरस की ओर भक्तों से गहरी बार नन्ददास ही सर्वोच्च मानते हैं, जो वास्तव भागवत में ही इस प्रकार की कोड़ा की थी—

काव्य और कला

निगम कल्पतरोर्मलितं प्रुवं
शुक्लमुखादमृतद्रव्यं संयुतम् ।
पिबत भागवतं रस मालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकः ॥

वृत्तभाचार्य ने भी कुण्ड को 'परमरस' 'रसो वै सः' कहा ।
प्रिय शिष्य सुरदास ने भगवान् की लीलाओं में शृङ्गार भाव की
ना इतनी तन्मयता से की, कि यही भक्तिरस हो गया । नन्ददास
की सैद्धान्तिक व्याख्या उपस्थित की और अपनी रचनाओं में
स्व का उसी प्रकार विस्तृत एवं निगूढ़ प्रयोग किया । "संसार
कुण्ड रस है, जो कुछ सौन्दर्य है, वह सब प्रभु का ही है" :

रूप प्रेम आनन्द रस, जो बहुत जगमें आहि
सो सब गिरिधर देव की, निधरक बरनौ ताहि

(रसमञ्जरी, १०)

। कहकर नन्ददास नायिका-भेद भी कह जाते हैं । यही नहीं, ये
ने काव्य में लीला, भाव, रति आदि शृङ्गारशास्त्र के मान्य विषयों
विस्तृत प्रयोग करते हैं (दे० रूपमञ्जरी) ।

नन्ददास ने विशेष रूप से गोपी-प्रेम के संयोग और वियोग पक्ष
ही चित्रण किया है । अन्य रसों और भावों का उनके काव्य में
प्रायः अभाव है । 'वात्सल्य रति', 'शोक', 'क्रोध', 'भय', 'आश्चर्य'
दि भावों का थोड़ा बहुत वर्णन कवि ने किया है किन्तु सब तो यह
कि ये वर्णन प्रायः किसी परिस्थिति के अनुरोध से हैं । उनमें कवि
अंतरात्मा की पुकार की वह मूर्त नहीं मुनारी पड़ती जिसे हम
गोपी-कृष्ण के प्रेम के वर्णनों में सहज ही सुन पाते हैं । 'दशमस्कंध'
। अफगुर, बकागुर, खालीनाग, गोवर्द्धनधारण आदि विभिन्न
लिनाओं में 'भय', 'क्रोध', 'आश्चर्य' आदि के द्विज भावों का प्रदर्शन

में कवि की स्वतन्त्र उद्भासनाओं की जो अपेक्षाकृत कमी दिसलाई पड़ती है उसी से यह जान पड़ता है कि कृष्ण कथा के साथ जुड़ी होने के अनुरोध से ही कवि इन लीलाओं के वर्णन की ओर अप्रसर होता है।" ('नन्ददास', पृ० ११०)

वास्तव में यह सच है, यदि 'दशमस्कन्ध' उपलब्ध न होता तो हम नन्ददास के अन्य रसों के प्रयोग से एकदम वंचित रहते।

संयोग शृङ्गार की अपेक्षा विप्रलम्भ का ही अधिक वर्णन एवं विस्तार हमें नन्ददास के काव्य में मिलता है। संयोग शृङ्गार की कुछ छाया रूपमंजरी और मँवरगीत में मिलती है, परन्तु वहाँ यह संयोग भावनात्मक एवं मानसिक संयोग है—

देखे मोहन गिरिधर पिपा, साँवरे जगत-सदन के दिया
पिपहि निरखि तिय लज्जित भई, सखि पाछे आछे दुरि गई
हँसत हँसत पिय तिहि द्विग आये, काम तैं कोटिक ठाम व्रसाये
सखि, सौ यह लखटनि अलबेली, अरुभी हेम प्रेम अनु बेली
ताही के रस ताहि मनावै, मोहनलाल महा छवि पावै
बनिता-लता सदब मुलदाई, ऐसे सरस निरस है जाई

नेह नकोड़ा नारि कौ, बार बार बन्वार
यलराये पै पाइयै, निरपीड़े निरसाद

बोलि बोलि मादक मनु बानी, कुँवरि निहोरि कुञ्ज में आनी
का करिय तिहि कुञ्ज निषाद, अनु मुख पुष्पन ही करि छाई
तामैं सेव मु पेयल ऐसी, आल-बाल रति बेली जैगी
बल्लु बल्ल, बल्लु बल्ल, बल्लु मनुहारी, ली बैठे तहँ कुञ्जनिहारी
मन चहै राखी, दतनु चहै भाखी, कामिनि कौ यह कोनक लागी
खो पारद कौ कर फिर करै, सो नकोड़ बाला ठर चरै

पुद्गल ही के दीपक जहाँ, जगमगि जोति लागि रही तहाँ
प्रथम समागम लब्धित दिया, अंचल पवन सिरावत दिया
दीप न बुझै विहँसि घर बाला, लपटि गई निय उरसि रसाला
भोजन भूल मिलत ही लहै, ऐ परि इन सरि परत न कहै
प्रेम पुलक अंकुर तिहि काला, सो अन्तर सहि सकति न बाला
चित विवधान सहति नहि सोई, रूपमञ्जरी अरु रस सोई

चुम्बन समय जु नासिका, बेसि मुती डुलाई

अधर छुड़ावन कौ मनौ, पिय की हाहा खाइ

(रूपमञ्जरी, ५२४—५२५)

मने इस विस्तृत अवतरण को इसलिए उद्धृत किया है जिससे यह
गँगा जा सके कि संयोग काव्य पर रसशास्त्र का क्या प्रभाव है ! यह
मिलन भौतिक जगत में नहीं होता है, स्वप्न में होता, यहाँ स्पष्ट ही
प्राप्यात्मिकता की छाप है। परन्तु मिलन-प्रसंग में 'रीति' का आग्रह
विशेष है। कवि ने रूपमती को नवोद्गा नासिका चित्रित किया है
(दे० मुग्ध नवोद्गा—रस० ४०)। प्रथम समागम के सम्बन्ध में
नासिका की लाज और लाजमोचन का विषय भी रीतिशास्त्र के
अनुकूल है। यदि कृष्ण अलौकिक नायक न होते, और मिलन स्वप्न
में होने पर उब पर अप्पात्म की छाप नहीं होती, तो हम स्पष्टतया
इस काव्य को शृङ्गारकाव्य कहते। 'रूपमञ्जरी' में उन्होंने नासिका के
विकास को भी रीतिशास्त्र की मान्यताओं के अनुसार ही चित्रित
किया है—

रूपमञ्जरी की वयःसधि (रस० ८०—८१),

अशक्त धौवना (१००—११०, तुलना कीजिये रस० अशक्त
बालचण्ड)

... में कवि ने अंगवस्त्र धलद्वारी के नाम दिये हैं।

त—गुरु०, त—गुरुमाता । और इसके बाद इनकी परिभाषा है । तब यह है कि कवि स्वयं ही निराकार है । कवि-रस इसका कोई भी भाव नहीं है । इस प्रकार की-भाव का न जानना वह भूल है । इनका जना में कविगुरु के भाव रस काट करने के लिए भाव, भाव, देना और रस का रसद नि (गुरुता के लिए रस का वही समझ) । सभी रसों पर गुरु-रसका के उदाहरणों का उदाहरण दिया है । जैसा का जैसा । दिया है । इनके वह समझ पड़ता है कि दोनों रसनाएँ लगभग ही समान की हैं, और कवि लौकिक प्रेम की निति पर ही पारस्परिक चिन्तन कर रहा है । समर्पितवादी में भोग गुरुता के दो कथा के अनुगोच में आई हैं—पहला प्रथम अध्याय में, दूसरा अध्याय के आरम्भ में लेकर पंचम अध्याय के अन्त तक । इस स चिन्तन में कवि सम्मेलन की अन्तिम अवस्था को पहुँच गया है । यही सम्मेलन इन संयोग का आध्यात्मिक पक्ष पुष्ट करती है । समस्त आराधक (गोविंद) और आराध्य (कृष्ण) का कोई भी नहीं रह गया है, वे परमानन्द की परिस्थिति को प्राप्त हैं, इसीसे धारे समय और निर्वचन को भूलकर पुकार उठता है—

दौरि लपटि गईं ललित लाल, सुन करत न आवे
मीन उछलि सर-पुलिन परे पुनि पावे
कोउ चपटो छौ कर लपटी, कोउ उर भर लपटी
कोउ गर लपटी कहति भले जूकान्दर कपटी
(रास०, ४०१—४०४)

और भी आगे बढ़कर कवि कहता है—

मीन मीन भुज मेलि, केलि कमनीय बढ़ी अति
लपटि लपटि सर निर्जनि कावे कदि आवे गति ।

छवि सौ निरुत्ति, पटकनि, लटकनि, मडल बोलनि
कोटि अमृत सम मुसकनि, मँडलता वेई वेई बोलनि

×

×

×

मुमर्दइन सौ मिलव, ललित, मडल निरुत्त छवि
कुंडल कच सौ अरभत, उरभत तहाँ बड़े कवि
बड़े इसके आगे भी जाता है—

हार हार मैं उरभि, उरभि बहियाँ मैं बहियाँ
नील पीत-पट उरभि, उरभि बेसर नथ महियाँ
भम-भरे सुन्दर अंग सरस, अति मिलत ललित गति
अंशनि पर भुज दिर्यै-लियै सोभा सोभित अति
दूरी मुकामाल, छुटि रही साँवरे उर पर
मानौ गिरि तै सुरसरि, दै बिधि धार धँसी धर

(५३०)

अन्त में भी इस रास (संयोग) को नन्ददास ने “अद्भुत रास” कहकर
उस पर आध्यात्मिकता का आरोप कर दिया है जिसको देखकर—

खिला खलिल है खलो, खलिल है गयो खिला पुनि
पवन धक्यौ, सखि धक्यौ, यक्यौ उह मंडल-सगरी

(५३२-५३३)

यह सौ हुआ संयोग-पक्ष । विप्रलंभ में नन्ददास और भी प्रभावशाली हैं ।
रूपमंजरी, विरहमंजरी, मँवरगीत, रुक्मिणीमंगल, रासपंचाध्यायी
और फुटकर पदों में शृङ्गार के इस पक्ष का अत्यन्त मार्मिक चित्रण
और विश्लेषण है । जो कवि ‘पलकांतर’ विरह जैसे सूक्ष्म और
प्रेमविरह-भाव की कल्पना कर सकता है, उसका विरह चित्रण
के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं ।

मुनि मोहन-सन्देश, रूप मुमिरन है आपो
 पुलकित आनन अलक, अंग आवेस बनायो
 विह्वल है घरनी परी, ब्रजवनिता मुरझाई
 है बल-छीट प्रबोधही, ऊषो बात बनाई

—मुनो ब्रजवासिनी (मँवरगीत २६—३)

निकसि प्रान तियतन तैं, द्विज के वचननि आये
 अब बहो 'थी हरि आये', मनौ बहुरथी किरि आये

(कविमनिमंगल, १६१—१६)

'रूपमंजरी' के पट्टशृङ्खल वर्णन और सारी विरहमंजरी में गोपीविरह ही चित्रण है। यद्यपि विरह-वर्णन में शास्त्रानुसरण पर कवि उतना आग्रह नहीं है, जितना संयोग-चित्रण आदि में, फिर भी वी की दशो दशाओं के कितने ही मार्मिक चित्र हमें नन्ददास के काव्य मिल जाते हैं—

अमिलापा

असो नाथ, असो रमानाथ, जदुनाथ गुसाईं
 नैदनन्दन बिहराति किरति, तुम बिन बन गार्ह
 बादे न केरि कपाल हूँ, गो-ग्वालन मुधि सेहु
 दुल-जलनिधि हम बूझही, कर अयलवन देहु
 निटुर हूँ कहँ रहे

(मँवरगीत, १४६-१४७)

चिन्ता

हराँ कुँवरि तरफरत, किरत घर आँगन ऐसैं
 रवि-कर तगत करी मझरी, पोरे जल जैसैं
 चढ़ि-चढ़ि अटनि, भरोलनि, भाँकति नवल किशोरी
 चंद-उदै ष्यौ चाहत, आहत सुनि बधोरी

(कविमनी मंगल, १५४)

काव्य और कला

स्मरण

मुनव स्याम कौ नाम, ग्राम-गृह की सुधि भूली
भरि आनन्द-रस हृदय, प्रेम-बेली द्रुम भूली
पुलकि रोम सब अंग भये, भरि आवे जल नैन
कंठ छुटे गद्गद गिस, बोले जात न वै
विवरणा प्रेम की

(भँवरगीत, १५)

गुण-कथन

हे सखि ! नैनन की पल यह, सुन्दर प्रियतम-दरसन नई
तिन कहूँ पल प्रिय-दरसन करे, छिन छिन बदन बिनोदन की
यार्ते अवर नदिन बहुत परे, निशि-बासर अवलोकन करे
सौ पल सखिन सहित बन घन में, बल समेत डोलत भोगन में
मधुर मधुर मुनि मेनु बजावत, अनेक राग-रागिनी उपजावत
तानन के सँग स्निग्ध कटाछे, चलत छु मन्दहँसनि के पाछे
बिन करि यह सुन्दर मुख नखी, नैनन की पल निनही लक्ष्मी
(दशमस्कंध, गोविन्दगीत २५)

छंदोग

छमकि है नैन नीर भरि आवे, पुनि मुनि जाह मरादवि पावे
पुलकि अंग मुरभंग बनावे, नीव नीच मुग्धाई आवे
विवरन तन अंग देह दिखाई, रूप बेलि जैसे घाम में आवे

(रूपमञ्जरी)

अहो अशोक ! हरि शोक, लोक-मनि पिपहि बतावहु
अहो पनस सुम-भावन, प्यासन अमृत तु प्यावहु

(रासर्वचाभ्याषी, २६०)

उन्माद

इहि विधि बन घन टूँदि, बूझि उनमत की नाई
करन लगी मन-हरन, लाल-लीला मन-भाई

×

×

×

हरि की सी चलनि, विलोकनि, हरि की सी हेरनि
हरि की सी गाइन घेरनि-टेरनि, वह पट-फेरनि
हरि की सी बन तैं आवनि, गावनि अति रसरंगी
हरि की सी कंदुक रचनि, नचनि हूँ ललित निर्मंगी

(वही, ३१०)

व्याधि

औ कीउ कमल फूल पकरावै, हाथ न लुपै निकट घरवावै
अपने कर तु बिरह सुर ताते, मति मुरझाहि डरति तिय बाते
(रूपमंजरी, १२३)

जड़ता

गोरे तन की कोति, छूटि छवि छाई रही घर
मानौ टाढ़ी कुँवरि, सुभग कंचन - अरुनी पर
बनु घन तैं बिछुरी बिचुरी, मानिनि - तन - काँसे
किषौ चंद सौ रुखि, पंद्रिका रहि गर पावै
जैन तैं बलधार, हार - धोवत घर आवत
भेंवर उझार न सकति, बाढ-मस मुल दिग आवत

(रासर्वचाभ्याषी, १४०)

मूच्छा

विह्वल है धरनी परी, ब्रज-धनिता मुरझाई

(भँवरगीत)

मरण

अब मो पै छिन जियौ न जाई, जो हौ कहौ तु करहि ही भाई
सुन्दर मुमनन सेज बिछाई, अरगज मरगज डसनि जसाई
चन्दन चरचि, चंद उगवाई, मद सुगंध समोर बहाई
पिक गवाई, केकी कुइलाई, पपिहा पै पीउ-पिउ बुलाई
मधुर मधुर तू बीन बजाइ, मोहन नन्द-सुवन गुन गाइ
यौ कहि कुँवरि प्रीव अब भोई, घरहराई तब सहचरि रोई

(रूपमंजरी, ५१८)

इस प्रकार हम देखते हैं कि नन्ददास ने 'विरह' के सिद्धान्तों का ही निरूपण नहीं किया है, उनके विरहकल्प में विरहिणी की सभी प्रीतियों का अत्यन्त सूक्ष्म और प्रभावशाली वर्णन है। उनकी विरह-सम्बन्धी रचनाएँ अधिकांश खंडगोतात्मक हैं, अतः उनमें इन परिस्थितियों का विकास रस की दृष्टि से दुर्लभ है; कुछकर पदों में जिस प्रकार केवल 'भाव' की ही योजना हो सकती है, उसका यहाँ अभाव है।

५—अलंकार

नन्ददास की दृष्टि रस पर है, अलंकार पर नहीं, परन्तु वे साहित्यिक हैं। इसलिए उनकी रचनाओं में अलंकार स्वतः ही आते हैं। नन्ददास ने उनके लिए 'साहित्यलहरी' (१६०७ में) की, जो जिसमें उन्हें नायिकाभेद और अलंकारों की शिक्षा दी थी, ...

आवश्यक नहीं कि रचना में अलंकारों की माला ही गुंथ दी जाय इसी से उन्होंने केवल कुछ भी अलंकारों का प्रयोग किया है। वे अलंकार स्वाभाविक रूप से ही उनके काव्य में आते हैं जैसे—

अनुप्रास

हे चन्दन, मुखचन्दन सब की बरन जुड़ावहु
नदनन्दन, जगबदन, चंदन हमें बतावहु

रूपक

नव मरकत मणि श्याम, कनक मणिमण ब्रजवाला

सद्व्यंजना

सुन्दारन को रोझि मनो पहिराई माला

उपमा

(१) सखिसौ वह लखनि अलपेली
अकभी हेम प्रेम अनु बेली

(२) नये धौरद्वर मुखद, मुवास
अनु घर पै दूसर फैलाव

(३) महार को अगौ आवति रात, भट दे मोहि लीलि ही जाति
मदन दाढ़बिच हो दै चँपै, तिहि दुख ताको तन मन कैपै
रवि औ तनिक न लेह जुड़ाइ, तौ मोहि निहा बकी गिलि आर
यही कुछ उनके प्रमुख अलंकार हैं जिनका बार-बार अत्यन्त सुन्दर प्रयोग हुआ है। कितने ही प्रयोगों पर पूर्ववर्ती कवियों और गूर की तुलना है जैसे

नगना निकमति तोर अब, नीर शुबत बर नीर
अंगुन रोवत घसन अनु, तन बिहुरन की पीर

इसी तुलना विद्यापति के इस पद से कीजिये—

सबल चीर रह पयोधर सीमा । कनक बेलि जनि पड़ि गेलि हीमा ॥
 औनुकि करताहि चाहे किए देहा । अबहि छोड़त मोदि तेन न नेहा ॥
 एसन रस नहि पाउव आरा । इये लगि रोह गलय जलधारा ॥

इसी प्रकार वयःसंभि और यौवनागम के चित्रण में विद्यापति के काव्य का विशद प्रयोग है। रूपवर्णन में विद्यापति और सूर दोनों ही कवि को प्रभावित कर रहे हैं। और शब्दालंकार के लिए कवि पर शब्द रूप से जयदेव के श्रुतिमधुर काव्य का प्रभाव है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने पूर्ववर्ती सारे साहित्य से अपने काव्य को पुष्ट किया है और अलंकारों के समीचीन प्रयोग से उसे सुन्दर बनाया है।

६—छन्द

नन्ददास के काव्य में अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है परन्तु मुख्य छन्द कुछ थोड़े ही हैं। इन्हें कवि ने अच्छी तरह मॉज लिया है और वे उसकी अपनी विशिष्ट चीज हो गये हैं। इसी अभ्यास-बहुलता के कारण उनमें कला का रूप अत्यन्त स्वाभाविकता से समाविष्ट हो गया है। उनके प्रयोगों में छन्दों के प्रयोग की तालिका इस प्रकार है :—

(१) पंचमंजरी ग्रंथ और दशमस्कंध—इन ग्रन्थों में चौपद, चौपद और दोहा छन्द प्रयुक्त हुए हैं। चौपद १५ मात्राओं का छन्द है, चौपद १६ मात्रा का, परन्तु कवि ने इस भेद पर ध्यान नहीं रखा है, कहीं १५ मात्रा, कहीं १६ मात्रा का छन्द लिखता गया है। वास्तव में चौपद-चौपद का यह अन्वेष और तुलसी-आयसी की भी रचनाओं में मिलता है। इससे

सूरदास ने एक भ्रमरगीत में रोला और दोहा की ऐसी ही आशोजना की है और नन्ददास ने वहीं से इस छन्द में भ्रमरगीत लिखने की प्रेरणा ली है, परन्तु एक अन्य स्थल पर सूरदास ने इस माध्या की टेक के साथ इस निमित्त छन्द का भी प्रयोग किया है। अतः प्रयोग सर्वथा मौलिक नहीं है फिर भी इसका रूप सूरदास से निखरा है।

(४) अनेकार्थमंजरी, नाम माला—इन ग्रन्थों में दोहा छन्द का प्रयोग मिलता है। दोहा-चौपाईवाले ग्रन्थों में कहीं कहीं बीच में सोरठा भी मिलता है। सोरठे में दोहे का उलटा मात्र कम है (१२, १३)। इसलिए कभी-कभी उसके प्रयोग से काव्य की समरसता जाती रहती है। इसीलिए दोहों के बीच-बीच में, या साथ सोरठे का प्रयोग है।

(५) कवित्त, सवैया, घनाक्षरी आदि—ये गीतिकाव्य के प्रमुख हैं, परन्तु भक्तिकाव्य में भी इनका काफ़ी प्रयोग हुआ है। तुलसीदास की 'कवितावली' में ये सभी छंद अत्यंत प्रौढ़ रूप में मिलेंगे। उसे यह पता चलता है कि काव्य के मुक्तरूप के लिए जिस धार दोहा कबीर के समय से चला आता था, उसी तरह भक्ति-काल के साथ ही काव्यप्रधान या भावपूर्ण मुक्तक विचार के रूप में प्रयोग आरम्भ हुआ। सूरदास ने भी इन छन्दों का प्रयोग किया, और नन्ददास ने भी, परन्तु इन दोनों कवियों में ही हम इन्हें अति-निमित्त एवं अति-कथित रूप में पाते हैं। नन्ददास का यह कवित्त वैद ही है—

कृष्णनाम चरतें भवन मुन्ही रो आली,
भूली रो भवन हो ती बारी भई रो

आधार नहीं है, परन्तु यह नहीं है कि छन्दों का कोई रिगल ही नहीं बनाया जा सके। अधिकांश पदों पर संगीत की “ध्रुपद”—शैली की छान है, जिसका प्रचलन मध्ययुग के राजदरबारी संगीत में विशेष था जैसे इस पद में

चटकीली पट लपटानो कटि,
बंसोबट बमुना के तट ठाढ़ो नागर नट ।
मुकुट लटक ओर कुंडल चटक
भ्रुकुटी विकट तामे अटकयो री मेरो मन ।
चरण लटपटे आछे कनक लकुट
चटकीली बनमाल ।

‘कर टेके हुम डाल टेड़े ठाड़े
नन्दलाल छब छ्वाई घटपट ।
नन्ददास प्रभु प्यारी बिन देखे गोरी ग्वाल
टारो न टरत यातं निपट निकट आवे सोये की लपट ।

यहाँ ‘र’ ‘ल’ अनुप्रास की प्रधानता और ८८ वर्णों के टुकड़ों का प्रयोग एवं वर्ण-संघर्ष और बकता ध्रुवपद गाविकी की विशेषता की ही उन्मुल कर रही है। कविता का सारा ढाँचा और सौन्दर्य यहाँ इसी गाविकी शैली पर टिका है।

८—भाषा-शैली

“नन्ददास में दो गुणों की प्रधानता है। वे दोनों गुण हैं माधुर्य और प्रसाद। माधुर्य तो उच्च भेदी का है। प्रायः एक पद मानो आठ एक गुच्छा है, जिसमें भीटा रस भरा हुआ है। शायरी में केवल कड़वा है। कविता में न तो कड़वापन है और न लय-बौद्धिक

अथ अग्नि अति आलस्य धीरे।”

(हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ६६०)

“शब्दचित्रों से नन्ददास ने मधुर ब्रजभाषा को और भी मधुर बना दिया है। रसावेश से हर्षित लटकते हुए कृष्ण ने कुसुम धूम से घले कुंज में प्रवेश किया जहाँ मधुकरी के कुंज थे। इसका वर्णन कवि करता है—

कुसुम धूरे धूधरी कुंज, हवि पुंजन छार्दै
गुञ्जत मनु अलिद, बीन अनु बञ्जत सुहारै

य शब्द-कुञ्ज में ‘धू’ की कुसुम-धूलि कई बार उड़ रही है, ‘म’ की नरावृत्ति में भौंलों की गुंज सुनाई पड़ रही है और यद्यपि कवि ने बल इतना ही कहा है कि वहाँ भौंरे हैं, फिर भी हम स्पष्ट सुन रहे कि वहाँ भौंरे हैं। पदला पद एक कुंज की तरह है। अनुस्वार वर्ण घन पल्लवों की तरह ‘र’ तथा ‘ध’ आवेष्टित किये हैं, ‘ज’ की पुनरावृत्ति ने दुमकुंज में शँखेरा कर दिया है। सहसा ही दूसरा पद दुलसता जाता है जो श्रीकृष्ण की भाँति लटककर उस पदले पद के कुंज में प्रवेश कर जाता है।

दूसरा शब्द-चित्र देखिये। सघन कुंज में चद्रमा की पतली किरन कलमिलाती हुई, काँती हुई गिर रही है—

फटिक-छटा सी किरन, कुंज रमनि जब छार्दै
मानहुँ वितन बितान, सुदेश तनाव तनारै

‘फ’ का उच्चारण ओष्ठ से होता है। इसलिए ‘फटिक’ के कहते ही ठ गुल जाते हैं। ‘ह’ का उच्चारण तालु से होता है। इसलिए ‘छ’ कहते ही होंठ और गुल जाते हैं और दाँतों की फटिक स्वच्छता पाई देनी है। यथ, दंतपंक्ति-ही सा स्वच्छ किरण का वर्ण है। किन्तु यह ‘किरण’ नहीं है, ‘किरन’ है, क्योंकि ‘कुंज के सघन रम’ से नती आ रही है।

यह तो स्वरूप का चित्र हुआ । अब गति का एक चित्र देखिये—

मंद मंद चलि चाक चन्द्रमा अस लुधि पाई
उभक्त है कनु रमारमन, प्रिय कौतुक आई
। पद में अधिक वर्णन ह्रस्व हैं। इ, उ, सब छोटे हैं। पद अत्यन्त
रे-धीरे चल रहा है, जैसे चन्द्रमा में आकाश।”

(नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, सं० २०, १९३६—१९४०, नन्ददास,
यमुप्रसाद बहुगुणा)

ऊपर के दो अवतरणों में नन्ददास की भाषाशैली की विशेषताएँ इस
रूप हैं—

(१) माधुर्य गुण और प्रसाद गुण

(२) समास-पद्धति

(३) वर्णों के नादात्मक प्रयोग द्वारा शब्द-चित्र और मूर्त-चित्र
स्थित करना ।

(४) ह्रस्व वर्णों का कलापूर्ण प्रयोग

कला की दृष्टि से नन्ददास को सब से सुन्दर पुस्तक ‘शरपंचाध्यायी’
। हिन्दी-साहित्य में जयदेव के “गीतगोविन्दम्” की माधुरी
जोड़ यही ग्रंथ कर सकता है। कदाचित् यह भ्रम भी है कि नन्ददास
जयदेव की शैली को ग्रहण किया है—ऐसी भुक्ति-मधुर और कोमल-
उपदावली और कही नहीं मिलेगी। बात केवल इतनी है कि जयदेव
भाँति नन्ददास ने भी खोज खोजकर सुन्दर शब्दों का प्रयोग किया
। जयदेव की खोज केवल संस्कृत तक है, परन्तु नन्ददास को संस्कृत
र ब्रजभाषा दोनों में खोज करनी पड़ी है। संस्कृत शब्दों का
रूप देखिये—

भाहिन उधरे गूढ़ न ऐल, मन्दट मेन १ १ २
 पुनि कवि अपने मन में गुन, २ १ ३ न ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
 रख-विहीन जो अस्वर सुनही, न अ- ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
 बाला-निमित्त, कदाचल, श्री लाल, अ- २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०

(१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०)

मन्ददास की शैली का प्रयोग भी मराठी में नहीं होता है।
 कम महारपूर्ण नहीं है। ये दोनों प्रकार के कवि शैली को लक्ष्य रख
 करते हैं—आलंकारिक अनालंकारीक। मराठी में आलंकारिक शैली
 उपमा, उल्लेख, रूपक आदि आलंकारों से युक्त होती है।
 आलंकारिक भाषा की कवि ने गूढ़ता नहीं है, वह सरल और
 समुदाय संगीत है, और हृदय को छूने का प्रयत्न करता है।
 ('मन्ददास', पृ० १११, भूषणजी)। कदाचित् इस शैली में
 पुष्टि में उपमाओं की इतनी जटिलता नहीं है, जो कि कवि
 उसकी कला पर मुग्ध हो जाते हैं। अतः मराठी कवि आलंकारिक
 वर्णन लिखता है, वहाँ भी वह आलंकारों से युक्त होता है।
 प्रयोग के विषय में अति लक्ष्य दे। मराठी कवि आलंकारिक
 निरालंकारिक भाषा भी एक सुन्दर नमूना देता है। मराठी कवि
 यह करते हैं।

अतः हमें यह बताना पड़ेगा कि मराठी कवि आलंकारिक
 पुष्ट है, मराठी के मराठी कवि आलंकारिक शैली को लक्ष्य रख
 कारण ही बनता है। मराठी कवि आलंकारिक शैली को लक्ष्य रख
 के कारण वहाँ 'काव्य' का छोटा नमूना है। मराठी कवि आलंकारिक
 इसे छोड़कर रहता है। मराठी कवि आलंकारिक शैली को लक्ष्य रख
 दुष्टों का भी समावेष्ट हो जाता है, मराठी कवि आलंकारिक शैली को लक्ष्य रख
 नहीं रहता।

परिशिष्ट

बल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत दर्शन और पुष्टिमार्ग

अनुशासन के कठिनों के बावजूद भी मनीषादि सम्पन्न होने के लिए बल्लभाचार्य और विदुषनाथ के धार्मिक एवं दार्शनिक विचारों का अध्ययन ही रहना परमावश्यक है। ऐसा किये बिना हम न उन साम्प्रदायिक मतों और मतों, न उनकी प्रेरणा को ही ठीक ढंग से समझ सकते हैं।

बल्लभाचार्य के विषय इतिहासी विद्वानों में अनुमानतः सन् १६१३-१६ के पूर्व लगभग सड़ आती गयी। इत्यादिनाथ और अन्य बन्धु-बन्धनों के साथ तीजपुर देश में उनका आश्रम था। रहने लगे। सन् १६१५ के आसपास ही आश्रम पर मुगलशाही ने आक्रमण की शरारत हुई, इससे वे सब लोग शरण ले गये। प्रशासनिक दृष्टि से शरण लेने की जगह थी। यहाँ भगवान् के वास्तविक रूप का अनुभव करने में वे लोग पूर्ण रूप से बल्लभाचार्य का मार्ग प्रशस्त कर गये। इस समय आश्रम में उपस्थित शिष्यों के अनुशासन विषय में भी कुछ लिखा है।

यह सब कुछ ही है जो कि हमें इस विषय में पता चलता है। बल्लभाचार्य के विषय में हमें कुछ और पता चलता है। इतिहासी विद्वानों के मतों से हमें पता चलता है कि वे बल्लभाचार्य के विषय में कुछ लिखा है। यह सब कुछ ही है जो कि हमें इस विषय में पता चलता है। बल्लभाचार्य के विषय में हमें कुछ और पता चलता है। इतिहासी विद्वानों के मतों से हमें पता चलता है कि वे बल्लभाचार्य के विषय में कुछ लिखा है। यह सब कुछ ही है जो कि हमें इस विषय में पता चलता है।

दक्षिण की ओर प्रवाण किया। वे विद्यानगर की राजधानी में राजा कृष्णदेवराय के यहाँ पहले पहुँचे। यहाँ एक महती सभा थी। व्यासतीर्थ नामक एक मध्य सम्प्रदाय के आचार्य अभ्यक्ष थे। उस समय उस सभा में एक शास्त्रार्थ चल चुका था और ब्रह्मवादियों को मायावादियों ने पराजित कर दिया था। वल्लभ ने ललकारकर मायावाद का खंडन किया और शुद्ध ब्रह्माद्वैत का प्रतिपादनकर विपक्षियों पर विजय-पताका पहराई। राजा के आग्रह से वे कुछ दिनों के लिए वहीं रह गये परन्तु उसके दिये द्रव्य के अर्धांश से एक रत्नत्रटित स्वर्ण-मेलना बही की चिट्ठनमूर्ति को समर्पित की। व्यासतीर्थ उन्हें मध्य सम्प्रदाय में दीक्षित करके अपनी गद्दी देना चाहते थे, परन्तु वल्लभ का आग्रह विष्णुस्वामी के मत की ओर अधिक था। “विष्णुस्वामी सम्प्रदाय की पुष्टि सारस्वत कल्पीय, उसका सिद्धान्त वेद-गीताव्यास-सूत्र भागवत-प्रतिपादित और आचार्य भगवन्मुख स्वरूप वैश्वानर एवम् उपास्यरूप शुक्लागामृतःस्योन्दुं श्री गोपोजनवल्लभ भगवान् श्रीकृष्ण है” (सम्प्रदाय प्रदीप, गदाधर द्विवेदी, सं० १६१०)

विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के एक आचार्य किल्वमंगल ने उन्हें सत्र में आदेश दिया—“अन्य सम्प्रदायों (रामानुज, मध्व, निम्बार्क) में नारदपञ्चरात्र व्याससूत्रादि-शास्त्र प्रतिपादित दीक्षा-पूजा का प्रचार होने से यद्यपि विष्णुस्वामी सम्प्रदाय में आत्मनिवेदनात्मक भक्ति की स्थापना की गई है, यद्यपि यह मार्गदामार्गीय है। अब आपके इस सम्प्रदाय में पुष्टि (अनुग्रह) मार्गीय आत्मनिवेदन द्वारा प्रेम-स्वरूप निर्गुण भक्ति का प्रकाश करना है। सम्प्रति भक्तिमार्गानुयायी जन-समाज शांकर सिद्धान्त के प्रचार बाहुल्य से पथभ्रष्ट हो रहा है, अतः उसके कर्तव्य तो आपके द्वारा ही सम्पन्न हो सकते हैं” (वही, पृ० ८८)

कल निजो जगत्कर्मणो विजयते अत्र विना और के मन्त्र

गुह्यतेज के दृष्टिकोण से मान्य किया। उन्होंने पश्चिमाध्यम, ईश्वर और अन्य तीनों को गायार्थ की। ८४ स्थानों पर भागवत का उक्त वाक्य प्रयोग किया। ये स्थान अब 'बल्लभाचार्य की बैठक' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार उन्होंने जीवन भर में १ बार परिक्रमार्थ की और श्रवण-वचन पर भागवत का गताद-गारावण, भक्ति (पुष्टि) मार्ग का प्रचार और शार्वार्थ द्वारा गुह्यतेजस की स्थापना भी की। कृष्णधाम में उनका मेरु के रूप में इन वाक्यांशों में उनके साथ रहे। उस समय के अन्य सम्प्रदायों के अनुयायी रामानन्द और शंकर मिश्र (प्रभुधाम) प्रभृति पंडित उनकी भागवत-टीका सुनकर उनके सेवक हो गये।

प्रभु की प्रेरणा से काशी आकर बल्लभाचार्य ने गार्हस्थ्य वर्ण में प्रवेश किया और पंडित देवदत्त भट्ट की कन्या से विवाह किया। इसी समय उन्होंने 'पञ्चावलम्बन' लिखकर मायावाद के खंडन में श्लोक रचे और शार्वार्थ का आग्रह किया। उस समय सब जगह शंकर अद्वैत का ही मान था जिसमें ब्रह्मा निर्घर्मक, निराकार है; प्रपंच मिथ्यास्वरूप, मायाकृत है और जीव चैतन्यस्वरूप नर है। बल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत की स्थापना की। उन्होंने कहा कि ब्रह्म विरुद्धधर्माभय है, प्रपंच भगवत्कृत होने से सत्य और संसार अद्वैतात्मकतात्मक होने से मिथ्या है और जीव भगवद्गुण-अणुस्वरूप-विश्वविगुण-चैतन्य है। अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में उन्होंने चार प्रकार के ग्रन्थ प्रमाण माने १—उपनिषद्, २—गीता, ३—उत्तर-मीमांसा (व्यासकृत) और ४—भागवत। इन्हें इन्होंने प्रस्थान चतुष्टय कहा है। इससे पहले के आचार्यों ने पहले तीन ग्रन्थों को ही प्रस्थान त्री के नाम से प्रमाण माना था। भागवत के प्रमाण रूप पर उन्हें विशेष आस्था थी—उन्होंने कहा है 'भागवत भगवान् वेदव्यास की समाधि भाषा है।' (बही, पृ० ६८)

परन्तु काशी में फिर भी मायावाट का प्राबल्य रहा, इसलिए बल्लभ कृष्ण-भक्ति का प्रचार करने के लिए पाश के चरणाट गाँव में रहने लगे। इसके अनन्तर प्रभु की प्रेरणा से वे नित्यलीलास्थल गोकुल में निवास करने लगे और वहाँ उन्होंने भगवत्सेवा का आश्रय स्थापित किया। वे वृन्दावन में एक मंदिर बनवा कर सपरिव्रह्म सेवा करने लगे। यही कारमीर के भक्त पंडित केशव भट्ट से उनकी मैत्री हो गई। वृन्दावन में उन्होंने सप्ताहपारायण भी किया और फलस्वरूप केशव भट्ट के शिष्य माधव भट्ट आदि भी इनके शिष्य हो गये। इन्हीं के द्वारा 'सुगोविनी' लेखन का आरम्भ हुआ। भीवल्लभ सपरिवार गोकुल से आकर श्री गिरिराज की उपत्यका में धीनायजी की सेवा करते हुए रहने लगे। उन्होंने मुक्ति की अपेक्षा भगवत्सेवा को ही बड़ा माना।

एक बार वे गोकुल से प्रयाग होकर जगन्नाथपुरी गये। वहाँ श्रीकृष्ण चैतन्य से उनका साक्षात्कार हुआ और दोनों में घनिष्ठता हो गई। कुछ समय बाद (संवत् १५६७) गोपीनाथ का जन्म हुआ और वे ब्रजमंडल लौट आये। यहाँ वे श्रीकृष्ण की बाललीला में तल्लीन हो गये। उन्होंने दारुका, बद्रिकाश्रम अनेक स्थानों पर पुष्टिभक्ति का प्रचार किया।

इस प्रकार अपने जीवन-कर्तव्य को समाप्त कर वे त्रिवेणी तट पर अद्वैत में रहने लगे। यही सं० १५७८ ई० में विठ्ठलनाथ का जन्म हुआ। वे ग्रंथों की रचना में लगे। ये ग्रंथ हैं—निबन्धध्वज, पौंड्रश ग्रंथ, अष्टभाष्य, भागवत की सुगोविनी टीका जिसमें भागवत के स्कन्ध १, २, ३, ४ का कुछ अंश और १० की टीका है। इसके उपरांत उन्होंने ये सन्यास धारण कर लिया और 'संन्यासनिर्णय' ग्रंथ की रचना की। वे भक्तिवैश्व में काशी पहुँचे। यहाँ उन्होंने 'शिक्षा श्लोक' रचकर अपने दोनों पत्रों को ज्ञानिम उपदेश दिया और यही भागीरथी की

शुद्धाद्वैत दर्शन

जैसा हमने ऊपर बताया है, बलभाचार्य के दार्शनिक मतवाद को ही शुद्धाद्वैतदर्शन कहा जाता है। इतना निश्चित है कि आचार्य श्रीबलभ शुद्धाद्वैत के सर्वप्रथम प्रवर्तक नहीं थे। अवश्य ही इसका प्रचार, उन्होंने ही किया और कई ग्रन्थ इस मतवाद के प्रकाशन में लिखे। उन्होंने ब्रह्मसूत्र पर अष्टभाष्य, भागवत की व्याख्या मुग्धचिनी, विद्वान्तरहस्य, भागवतलीलारहस्य, एकान्तरहस्य, विष्णुसूत्र, अन्नः-करणप्रबोध, आचार्यकारिका, आनन्दाधिकारण, नवरत्न, निरोधसङ्घण और उसकी विवृति, संप्राप्त-निर्गुण आदि अनेक ग्रंथों की रचना की। इसमें विद्वान्तरहस्य और भागवतलीलारहस्य ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुए हैं। विष्णुसूत्र हिन्दी भाषा का ग्रन्थ है। इसमें विष्णुगुण प्रतिपादक कुछ पद हैं।

(कल्याण, वेदान्तांक पृ० ७०१)

ऐसी ग्रन्थों के आधार पर शुद्धाद्वैत दर्शन की विवेचना होती है।

१—ब्रह्म

“आचार्य बलभ ब्रह्म को साकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्ववृत्त और सन्निधानन्द रूप मानते हैं। उनके मन में ब्रह्म शुद्ध, माया आदि ब्रह्म में नहीं है। ब्रह्म निर्गुण और प्राकृतिक गुणों से अतीत है। वे गुणातीत होने पर भी जगत् के कर्ता हैं। ब्रह्म की कि अचिन्त्य और अनन्त है। वे सब कुछ हो सकते हैं, अनन्त जगत् में विद्वद् ब्रह्मों और विद्वद् वाक्यों का भी पुनरुत्पत्ति हो सकता है। उनके मत में ब्रह्म ही जगत् के निमित्त और उत्पत्ति कारण है।

कर्ता भी है और भोक्ता भी। वे कर्ता होने पर भी निर्विकार हैं। शरीरधारण होने पर भी उनमें संसार-धर्म नहीं है।”

जगत उत्पन्न है। हरि की इच्छा से ही जगत का आविर्भाव हुआ है। हरि की इच्छा से ही जगत का तिरोधान होता है। ब्रह्म लीला के लिए अपनी इच्छा से जगत-रूप में परिचित हुए हैं। जगत ब्रह्मात्मक है। प्रपञ्च ब्रह्म का ही कार्य है। आचार्य वल्लभ अधिकृत परिणामवादी हैं। उनके मत से जगत मायिक नहीं है और न भगवान् से ही भिन्न है। उसकी उत्पत्ति और विनाश नहीं। जगत सत्य है, पर उसका आविर्भाव और तिरोभाव होता है। जगत का जब तिरोभाव होता है तब वह कारण रूप से और जब आविर्भाव होता है तब कार्य रूप से स्थित रहता है। भगवान् की इच्छा से ही सब कुछ होता है। कदा के लिए ही उसने जगत की सृष्टि की—अकेले श्रीदा सम्भव नहीं, इससे भगवान् ने जीव और जगत की सृष्टि की।”

सत्यरूप ईश्वर से उत्पन्न जगत् अस्तित्व कैसे होगा। कारण के गुण कार्य में आवश्यक प्रत्युद्भूत होने हैं। जनप्रपञ्च भगवत्कृत है, मायाकृत अस्तित्व नहीं। वल्लभाचार्य के सिद्धांत में नामरूपात्मक सृष्टि सत्तन्त्रित्व है क्योंकि दोनों के सर्वविध कारण भगवान् हैं। प्रपञ्च को मिथ्या, मायामय, स्वप्नमय, बतलानेवाले वाक्यों का अभिप्राय जीव को वैराग्य उत्पन्न कराना मात्र है।

प्रपञ्च को सत्य, भगवन्तरूप मानने पर ही वायों की उत्पत्ति है। सभी धर्म, ज्ञान, भक्ति सत्य होकर फल प्रदान करेंगे, नहीं तो प्रपञ्च अस्तित्व होने पर धर्म, धर्म, ज्ञान, भक्ति आदि पुरुषार्थ तथा तत्त्वज्ञान भी अस्तित्व और अवास्तविक होंगे। भुक्ति ने स्वयं कहा है—सर्वे सन्निवर्त ब्रह्म। प्रपञ्च ही ब्रह्म है। प्रपञ्च की अस्तित्वता के लिए सृष्टि स्वयं और स्वयं का एक उपरिष्ठित किया जाता है। आचार्य कहते हैं कि मिथ्याज्ञान के लिए भी किसी ब्रह्म नहीं है—

वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत दर्शन और पुष्टिमार्ग

मानसी सेवा फलरूपा है और द्रव्यापेक्ष तथा शारीरिक सेवा रूपा ।

आचार्य ने कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों मार्गों में मोक्षलाभ है । परन्तु सर्वोत्तम फल भक्ति द्वारा ही प्राप्त होता है क्योंकि 'पूर्व' पुरुषोत्तम' में लीन हो जाता है, ज्ञानी 'अक्षर ब्रह्म' को होता है और कर्मकाण्डी केवल स्वर्ग पाता है । ये उत्तरात्त स्थितियाँ हैं ।

साधना की सबसे ऊँची स्थिति वह है, जब कोई सा रहता । भक्त भगवान् पर पुर्यातः आश्रित होता है । भगवान् ही पोषण करते हैं । तब वे विशेष अनुग्रह (पुष्टि) कर उनके सा 'लीला' रचते हैं । गोपियों इस पुष्टि का सर्वोत्तम उदाहरण है ।

इस प्रकार वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों ने दार्शनिक जगत का प्रति उपभूषित कर दी और धर्म पर गहरी छाप छोड़ी । हम हैं कि शङ्कर के मायावाद (अद्वैत वेदान्त) में भक्ति को केवल वह भी व्यावहारिक स्थान, मिला था, परन्तु बाद की अद्वैत पर एक प्रकार की भक्ति की परम्परा चल गयी । इसमें भक्त नि प्रति माधुर्य भाव से प्रेरित होता था । वल्लभाचार्य ने दार्शनिक से मायावाद का विरोध किया परन्तु वैसे वह अद्वैतवादी ही रहे उन्होंने अद्वैत भक्ति का प्रचार किया यद्यपि उसका माधुर्यपूर्ण स्वीकार करके सेशमाधुर्य रूप ही उन्हें प्रिय हुआ । भा

वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत दर्शन और पुष्टिमार्ग

२२५

रहता है। अन्त में अहंकार-ममता-रूप संसार का नाश हो जाता है। पुष्टिमार्गीय भगवद्गुणों की प्राप्ति की कामना रखता हुआ शुद्धभक्त, मागवत्, शरणवाचन आदि में लगता है। अन्त एक हो है, मर्षाद-मार्गी की भी वही फल मिलेगा परन्तु उस अनुग्रह की तो अपेक्षा देगी। इसीसे भक्तिमार्ग (पुष्टिमार्ग) ज्ञानमार्ग (मर्षादमार्ग) से ऊँचा है। वल्लभाचार्य दोनों मार्गों को सामने रखते हैं—वे ज्ञानमार्ग से विरोधी नहीं हैं (यूर और नन्ददास के भ्रमरगीतों में जो ज्ञान और योग की खिल्ली उड़ाई गई है, वह समासमयिक धार्मिक परिस्थितियों की रक्षा का प्रभाव है। वल्लभाचार्य के मिटाने को उनमें देखना भूल)। जिस मर्षादमार्ग को उन्होंने बंद बनाया है, वह ज्ञानमार्ग ही है।

आचार्य ने तनुजा सेवामार्ग के तीन प्रकार बताये हैं। मंदिरमार्जन, प्रसादन आदि (वादसेवन), पंचांगुलस्नान, संकल्प, आध्यात्मन दि उपचार (अर्चन भक्ति), स्नेहानुहृत वस्त्रानूपय भोगराग सेवा दत्तव)। इन्हीं में सबका समावेश है।

पुष्टिमार्गीय भक्ति नवव्याभक्ति से एकान्तः भिन्न नहीं है। वल्लभा-चार्य भी नवव्याभक्ति मानते हैं—

बल्लभानायक का शब्द 'सुख' शब्द 'सुख' शब्द

धो शिला नहीं देने । भक्त ३ ना २' १ ३ ४ ५ है ।
कहते हैं—कि छन्दाम-भक्त का ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
बाँझनीच नहीं । भक्तिमार्ग में म' १३ १४ १५ १६ १७ १८
दुःखकर है ।

[illegible]

विहलत्वतयाऽम्भस्थय प्रकृति प्राकृत नहि

शानं गुणाश्रय तन्मयं वनमानस्य बाधक ।

(विरह से उत्पन्न उन्माद तथा श्रवण प्रवृत्ति न न रहना—यै दोष-
विरह की अवस्था है। भगवान् का ज्ञान श्री गुरु सभा अवस्था
वर्तमान भक्त के भाव को श्राधक है।

हरि के विरह का अनुभव होने के लिए शृंगार का परित्याग उचित है, परन्तु निरन्तर विरह-भाव से भिन्न कुछ प्राप्ति ही माधन है, और साधन की आवश्यकता नहीं है। मानस मया न फल है—
(१) अलौकिक सामर्थ्यदान (लीला देवन ना दान), (२) भिन्न मनोरथ फल (संग रहने तथा का करके) । - १ कविचन्द्र / लाला से भाग



‘सेवा’ से बल्लभ का अर्थ उपासना (साधारण पूजा) नहीं :
उन्में भावना की ही प्रधानता है। साधारण पूजा में कर्मकाण्ड प्र-
ह—यहाँ भावना प्रधान है। यह भावना नन्द-गोपी, यशोदा गोर के रूप
है। उपचार महत्वपूर्ण नहीं है। असल चीज़ पुष्टि है जिसके नि-
दान, कर्म, भक्ति किसी की भी आवश्यकता नहीं। वह तो भगव
का अनुग्रह है। साधारण रूप से ८ दर्शन (उपचार) हैं—मंगल
शाल, शृंगार, राजभोग, उत्थापन, संध्या-आरती, शयन। (वि-
विषय के लिए लेखक की दूसरी पुस्तक ‘सूर साहित्य की भूमि
पठनीय है)।

बाद में भी ‘भावना’ की प्रधानता रही। गोकुलनाथ, हरि-
और द्वारकाधीश ने कई भावनाग्रंथ लिखे। वास्तव में सेवा प्रक
की विशद योजना विठ्ठलनाथ ने की। उन्होंने सगीत, कविता, चित्रशला-
सभी को कृष्ण की सेवा में लगाया। होली, दीपावली, अक्षय तृती-
आदि त्योहारों और कृष्ण सम्बन्धी उत्सवों का आयोजन भी उन्होंने।
किया—इसे ‘नैमित्तिक कीर्तन’ कहा गया, दैनिक कृत्य ‘निरव’ रहा
अष्टाष्ट के अधिकांश पद इन्हीं ‘निरव’ और नैमित्तिक कीर्तनों
लिए बने।

भी बल्लभाचार्य के बाद गोपीनाथ गढ़ी पर बैठे (१५८७ म०
और उनकी मृत्यु के बाद विठ्ठलनाथ (१५६१ सं०)। ये ‘गोसाईजी’ के
नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हीं से बल्लभ सम्प्रदाय का विस्तार हुआ
शुद्धाद्वैत और पुष्टि की व्याख्या में इन्होंने कई ग्रन्थ लिखे—बल्लभ
का ‘सुगोपनी’ पर टिप्पणी, शुद्धाद्वैत प्रसारक ग्रन्थ ‘भीविद्वन्-
मरदन’ इनके ग्रंथों में साहित्य की
की शृंगार निष्ठा पर कई ग्रंथ हैं

कृष्णभक्ति का प्रवेश बंगाली वैष्णवों द्वारा हुआ पान्तु ।
अन्य शक्तिशाली सम्प्रदायों का भी उदय हुआ । थोड़े ही दिनों
में कृष्णभक्ति-सम्प्रदायों का केन्द्र हो गया जिनमें मुख्य ये—

१—गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय

२—बल्लभाचार्य का गुडिभक्ति सम्प्रदाय

३—दत्तत्रिपथ का राधास्वामी सम्प्रदाय

४—हरिदास का टट्टी सम्प्रदाय

इनमें गौड़ीय सम्प्रदाय तो अवश्य कुछ प्राचीन है, पान्तु
तीनों सम्प्रदाय बहुत कुछ समकालिक हैं । बल्लभ की मृत्यु (१५
ई०) तक शेष तीनों समकालिक सम्प्रदाय बहुत अविकसित
हो चुके थे । इन तीनों सम्प्रदायों में राधा का अस्तित्व था, कहीं कुछ
मूर्ति की प्रति स्तुत थी, कहीं राधा को स्वामिनी मानकर उर्ध्व
से भी ऊँचा दर्जा दिया गया था । हिन्दी सम्प्रदायों में गुडि सम्प्रदाय
विशेष प्रभावशाली हुआ, पान्तु वह सिद्ध के समय (१४६२ ई०
१५४२ ई०) को बना है । राधास्वामी और टट्टी सम्प्रदायों में राधात्मक
सम्प्रदाय की मान्यता विशेष थी । दोनों सम्प्रदायों के प्रवर्तकों
राधाकृष्ण सम्प्रदायों हिन्दी पर हमें आज भी उपलब्ध हैं ।
सम्प्रदायों में राधा की जो प्रतिष्ठा थी, उसका भी प्रभाव गुडि
पर पड़ा होगा । इनमें द्विसम्प्रदाय के प्रवर्तक विद्याविंश के
संज्ञ के सम्प्रदाय में प्रवेश है । राधास्वामी सम्प्रदाय का (१५४२ ई०)
मान्य है, पान्तु हिन्दी के सिद्ध १४६२ ई० के मान्यता की
अनुगामी मान्यता बहुत के दिखाने । बाद में इनमें एक प्र
सम्प्रदाय की स्थापना की और सन् १४६२ (१५४२ ई०) में १५४२
के कोणार्कस्थान की मूर्ति स्थापित की । इनका प्रभाव बलवान्

हरि रसना राधा-राधा रट

अति अधीन आतुर यद्यपि पिय कहियत है नागर नट
संसम हुम परिभन कुंजन दूदत कालिदी तट
विश्रपत हैसत विपीदत स्वेदत सुभ सीचने अंसुवन वंशीवट
अंगराग परिधान बसन लागत ताते जु पीतपट
जयभी हितहरिवंश प्रशसित श्यामा दे प्यारी कचन घट
भी हितहरिवंश राधा को कृष्ण की विवाहिता मानते हैं, हरिदास भी
ऐसा ही मानते हैं। इनके काव्यों ने सूरदास को अवश्य प्रभावित किया
होगा, विशेषकर निकुंज-केलि जैसे पदों ने जिनमें एकांत तन्मयता
के द्वारा राधा-कृष्ण की एकात्मता प्रकट की गई है। स्वयं हितहरिवंश
के काव्य और चिंतन पर जयदेव का व्यापक प्रभाव जान पड़ता है।
दोनों के मङ्गलाचरण श्लोकों की तुलना से ही यह बात स्पष्ट हो
जाती है—

मेपैमेदुरअंवरं मनभुवः श्यामासमाल हुमै-
नंक्तं भीकर्यं स्वमेव तदिदं राधे यहं प्रापय
इत्थं नंद निदेशतश्चलियोः प्रत्यध्व कुञ्जदुर्म
राधामाधवयोर्भवन्ति यमुनाकुले रहः केलयः

(जयदेव)

यस्याः कदापि वसनाचल खेलनोत्थ
घन्याति धन्यपवनैः कृतार्थमानो
योगीन्द्र दुर्गमगतिर्मधुवदनोऽपि
तस्या नमोऽस्तु ब्रजभानुमुवोदिशेऽपि

दोनों में मूल भावना एक ही है। इस प्रकार जयदेव के काव्य ने

मन विठ्ठलनाथ की आयु १६ वर्ष की थी। २१ वर्ष की आयु में उन्हें सम्प्रदाय की गद्दी मिली। तब सूरदास ५६ वर्ष के वयोवृद्ध थे होने और सूरसागर का प्रमुख भाग उन्होंने समाप्त कर दिया होगा। विठ्ठलनाथ के गद्दी पर बैठने के १० वर्ष बाद हम उन्हें 'सूरसारा-स्त्री' लिखते पाते हैं। विठ्ठलनाथ की रचनाओं को देखने से यह स्पष्ट रूप से पता लगता है कि उन्होंने राधा को विशेष महत्त्व दिया और शृंगारभाव से पुष्ट मधुरभक्ति को भी ग्रहण किया। उससे पहले शक्त्यभक्ति ही सम्प्रदाय में मान्य थी। परन्तु फिर भी यह मधुर भक्ति उस प्रकार की भक्ति नहीं थी, जिस प्रकार की भक्ति अन्य सम्प्रदायों में थी। यहाँ सारास्व कृष्ण ही थे, राधा नहीं क्योंकि—

मन में रखो नाँदिन ठौर

स्नदनन्दन अलुत कैसे आनिए उर और

रन्तु राधा ही तो कृष्णतत्त्व का रहस्य जानती है—

राधा परम निर्मल नारि

कहति ही मन कर्मना करि हृदय दुविधा टारि

स्याम औ एक तुरी बाव्यो दुराचरनी और

इसी से वे राधा के प्रेम को परम उदाहरण रूप ही लेते हैं—

पुनि पुनि कहति है ब्रजनारि

धन्य बद्धमागिनी राधा तेरे बस गिरपारि

धन्य नन्दकुमार धनि तुम धन्य तेरी

धन्य तुम दोउ नवल खोरी कोकला

हम विमुल तुम कृष्णसंगिनि प्राण

एक मन एक बुद्धि एक चित्त दुहुनि

एक दिन त्रिगु तुमहि देखे

मुरलि में तुम नाम पुनि पुनि

